दयानन्द सिद्धान्त भास्कर

कृष्णचन्द्र विरमानी ।

* ओ३म

दयानन्द-सिद्धान्त-भास्कर

सम्पादक और प्रकाशक—

कृष्णचन्द्र विरमानी

हाल, उपस्थित, रावलपिण्डी (पञ्जाब)

(डेरा इस्माइलखान निवासी)

—o:❋:o—

—:o:—

प्रथम बार २००० | सम्वत् १९९० सन १९३३ ई० | मूल्य १)

दयानन्द-सिद्धान्त-भास्कर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती।

Bhalawn Press Delhi

प्रेमोपहार
श्री..
....जी के
कर कमलों में समर्पित।
मिति.....................................

❀ ओ३म् ❀

प्राक्कथन

श्रीयुत विरमानी जी का यह पुस्तक श्रीमद्दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी का सब से अच्छा तुहफ़ा है, स्वाभाविक था कि इस अवसर पर यात्री और दर्शक ऋषि दयानन्द के वचनामृत पान करने की इच्छा करते। उसी की पूर्ति विरमानी जी ने यह पुस्तक लिखकर की है। स्वा० दयानन्द के सभी ग्रन्थों, यहां तक कि उनके पत्र व्यवहार रूपी समुद्र का मथन करके यह अमृत निकाला गया है। जिस किसी विषय में भी ऋषि दयानन्द की सम्मति जानना चाहो, वही प्रकरण इस पुस्तक में देखलो। उनके समस्त लेख और सम्मति इकट्ठी एक जगह मिल जायगी। अनेक विषयों में जो बात स्वामी जी के सभी ग्रन्थों के पढ़ने से प्राप्त होती वह इस एक ही ग्रन्थ के पढ़ने से प्राप्त हो सक्ती है। यही इस पुस्तक की विशेषता है। पुस्तक के तय्यार करने में जो परिश्रम विरमानी जी को करना पड़ा है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ, विश्वास है कि इस ग्रन्थ का अधिक से अधिक प्रचार होगा।

बलिदान भवन, देहली
१-६-१९३३

नारायण स्वामी

सम्मतियां

(१)

दर्शन-शास्त्र के पारगामी, अद्वितीय, विद्वान्, त्याग-मूर्ति, गुरुकुल पोठोहार के आचार्य्य, आर्य्य समाज के मान्य रत्न, **श्रीयुत पण्डित मुक्तिराम जी** उपाध्याय, लिखते हैं:—

"दयानन्द सिद्धान्त भास्कर"

यह एक संग्रहात्मक ग्रन्थ है। ऋषि दयानन्द के सब ग्रन्थों और कतिपय पत्रों में राजनैतिक, सामाजिक, और धार्मिक आदि विभिन्न विषयों पर जो सिद्धान्त वर्णित हैं, उनका सार संग्रह इस पुस्तक में बड़ी उत्तमता से किया गया है। इस पुस्तक को हम ऋषि दयानन्द के अभिमत सब सिद्धान्तों का कोष कह सकते हैं। किसी भी विषय पर ऋषि दयानन्द के ही शब्दों में उनकी सम्मति अनायास इस पुस्तक से मिल जाती है। इस पुस्तक के सम्पादक हैं, **श्रीयुत कृष्णचन्द्र विरमानी**। आप बड़े स्वाध्यायशील सज्जन हैं। आर्य सिद्धान्तों का आप को पर्याप्त ज्ञान है। आपने इस पुस्तक का सम्पादन बड़े परिश्रम से कई मास के सतत स्वाध्याय के बाद किया है।

पुस्तक बड़े काम की वस्तु है। धर्म पथ परिज्ञान के लिये यह प्रत्येक आर्य नर नारी के पास होनी चाहिये।

(२)

आर्य्य समाज के विख्यात विद्वान्, सुप्रसिद्ध व्याख्यानदाता, **श्रीयुत महता रामचन्द्र जी शास्त्री**, महोपदेशक, श्रीमती आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब लिखते हैं कि:—

"मैंने "दयानन्द सिद्धान्त भास्कर" को पढ़ा। इसके सम्पादक **लाला कृष्णचन्द्र विरमानी** ने इस ग्रन्थ में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रत्येक सिद्धान्त को उन्हीं के शब्दों द्वारा संग्रह करके अपनी स्वाध्याय शीलता का पूर्ण परिचय दिया है। आर्य धर्म के जिज्ञासुओं के लिये यह ग्रन्थ अत्युपयोगी है। मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ धार्मिक जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा और सम्पादक का प्रयत्न सफल होगा।"

दयानन्द-सिद्धान्त-भास्कर

कृष्णचन्द्र विरमानी।

Bhadawar Press D...hi
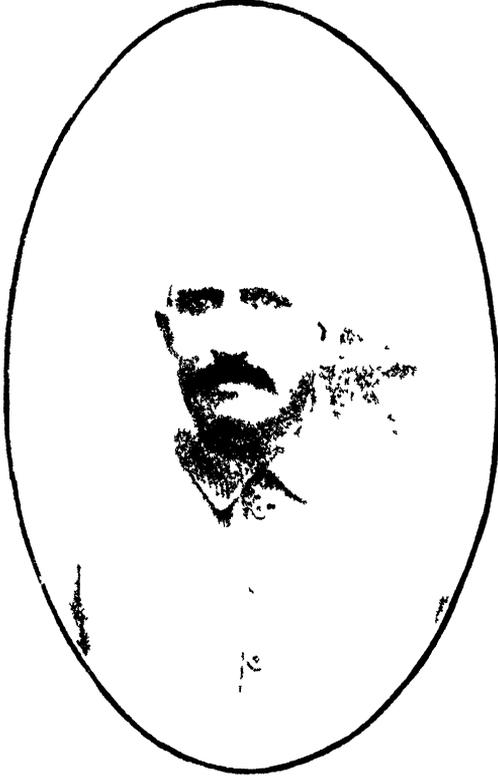
सम्पादक का वक्तव्य

पाठक वृन्द !

पूज्यपाद श्रीयुत पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय गुरुकुल पोठोहार के परामर्श पर मेरे मन में इस पुस्तक के सम्पादन करने का विचार उत्पन्न हुआ। मैंने महर्षि दयानन्द के सब ग्रन्थों और पत्रों का मन्थन करके यह सार-रूपी अमृत सङ्कलन किया है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि महर्षि के मूल ग्रन्थों के पाठ से जितना आनन्द और लाभ प्राप्त हो सकता है, उतना इस संग्रहात्मक ग्रन्थ से होना सम्भव नहीं है, परन्तु जो लोग महर्षि के मूल ग्रन्थों को किसी कारण वशात् नहीं पढ़ते, उनके लिये यह पुस्तक विशेषतः अत्योपयोगी सिद्ध होगी। मैंने ऋषि वचनामृत-रूपी वाटिका से सुन्दर पुष्पों का संग्रह करके और उन्हें एक सूत्र में ग्रन्थित करके एक रमणीय पुष्प-माला तैय्यार की है। इस माला के फूलों की एक एक पंखड़ी में अद्भुत सौन्दर्य है, सौरभ है और माधुर्य है।

मुझे आशा है कि यह संग्रहात्मक ग्रन्थ नवयुवकों, बालकों और स्त्रियों के हृदयों में विशेषतः ईश्वर-विश्वास, सत्य-निष्ठा, सदाचार, निर्भयता और समाज-सेवा आदि उत्कृष्ट गुणों के संचार करने में सहायक होगा। प्रत्येक आर्य माता पिता से मेरी प्रार्थना है कि जहां वे स्वयं इस पुस्तक का पाठ करें, वहां वे स्व-सन्तान को भी इसके पढ़ने के लिये जरूर आग्रह करें। कोई आर्य परिवार इस पुस्तक से खाली नहीं रहना चाहिये, क्योंकि जहां इस पुस्तक की एक प्रति भी उपस्थित होगी, वहां किसी वैदिक सिद्धान्त के निर्णय करने, अथवा महर्षि दयानन्द की किसी विषय विशेष पर सम्मति जानने के लिये किसी अन्य पुस्तक की जरूरत न रहेगी। सारांश यह कि महर्षि के मन्तव्यामन्तव्य-सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य-विषयों पर यह पुस्तक एक प्रामाणिक विश्वकोष का काम देगी और पाठकों के हृदयों में वैदिक धर्म के प्रति प्रेम, श्रद्धा और उत्साह की स्फूर्ति भी पैदा करती रहेगी। मैं अनुभव करता हूँ कि प्रथम संस्करण में कतिपय त्रुटियां अवश्य होंगी, परन्तु सूचना मिलने पर मैं उन्हें दूसरे संस्करण में दूर करने का हर प्रकार से प्रयत्न करूँगा। किमधिकम्।

रावलपिण्डी
२६, मई, सन् १६३२ ई०
१४, ज्येष्ठ, सवत् १६८६

विनीतः—
कृष्णचन्द्र विरमानी

समर्पण

श्रीयुत् लाला रामदित्ता मल जी, बी० ए०,

प्रिन्सीपल, डी० ए० वी० कालिज, (रावलपिण्डी) के

श्री चरणों में।

श्रद्धास्पद मित्रवर;

आर्य्य समाज के पूज्य प्रवर्तक महर्षि दयानन्द के गौरवान्वित विचारों और मन्तव्यों को सब-साधारण तक पहुँचाने के निमित्त मेरा यह परिश्रम तभी सार्थक और सफल होगा, जब मैं आप सरीखे महानुभावों के श्री चरणों में यह तुच्छ सी भेंट सादर समर्पण करूंगा, यही ध्वनि मेरे हृदय में बार २ सुनाई देती है और इसी में ही मेरे अन्तरात्मा की तुष्टि हो सकती है, अन्यथा नहीं।

मेरे सम्मान के पात्र श्री मास्टर जी !

जितना मुझे आपके शुभ गुणों से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त है, उतना शायद् आपके किसी भी निकट वर्त्ती सम्बन्धी अथवा मित्र का नहीं हो सकता। आपके अनुकरणीय जीवन को देख कर मुझे कई बार यह अनुभव होने लगता है कि आपके असंख्य श्रेष्ठ गुणों का विकास जन्म जन्मान्तरों से क्रमशः होता चला आया है। यों तो हजारों की संख्या में आपका शिष्य परिवार आपकी सत्कीर्ति को स्थान २ पर विस्तृत कर रहा है, परन्तु इस में अत्युक्ति नहीं कि जिस २ मनुष्य को एकबार आप के संसर्ग में आने का शुभावसर प्राप्त हुआ है, वह आपके निःस्पृह परोपकारी जीवन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका, और यही आपकी प्रतिष्ठा का मूलकारण है। आप आर्य्यसमाज के पुराने सेवक और महर्षि के अनन्य भक्त हैं। आपका सरल और सौम्य स्वभाव, संयम, सादा जीवन, सदाचार, शिष्टाचार, ईश्वर-विश्वास, उत्साह और समाज-सेवा का भाव देख कर मुझे कई बार निराशा में आशा की रेखा दिखलाई देने लगती है और यह जान कर संतोष होता है कि आर्य्यसमाज के सेवा-क्षेत्र में भी चुप चाप काम करने वाली, सदाचारी, और निःस्वार्थी आत्माओं की कमी नहीं है।

रावलपिण्डी
२६, मई, सन् १९३२

आपका स्नेह-पात्र—
कृष्णचन्द्र विरमानी

❋ उद्धृत पुस्तकों की सूची ❋

१—सत्यार्थ प्रकाश
२—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका
३—संस्कार विधिः
४—गोकरुणा निधि
५—आर्य्योद्देश्य रत्न-माला
६—भ्रान्ति निवारण
७—भ्रमोच्छेदन
८—अनु-भ्रमोच्छेदन
६—आर्याभिविनय
१०—वेदान्ति ध्वान्त निवारण
११—वेद विरुद्ध मत खण्डन
१२—व्यवहार भानु
१३—प्रतिमा पूजन विचार
१४—पूना के व्याख्यान
१५—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश
१६—स्वीकार-पत्र
१७—नियम, उपनियम
१८—पञ्च महा यज्ञ विधिः
१६—मुम्बई के निर्धारित नियम
२०—शिक्षा-पत्री ध्वान्त निवारणम्
२१—सत्य-धर्म-विचार (धर्मचर्चा मेला चांदापुर)
२२—वेदाङ्ग प्रकाश
२३—महर्षि के पत्र
२४—स्वामी नारायण मत खण्डन

विषयों की अनुक्रमणिका

संख्या	विषय	पृष्ठ

संख्या	विषय	पृष्ठ

संख्या	विषय	पृष्ठ

संख्या	विषय	पृष्ठ

संख्या	विषय	पृष्ठ

संख्या	विषय	पृष्ठ

संख्या	विषय	पृष्ठ

दयानन्द सिद्धान्त भास्कर।

—:०:—❀—:०:—

महर्षि दयानन्द रचित ग्रन्थों की सूची

(१) सत्यार्थ प्रकाश (२) ऋगवेदादि भाष्य भूमिका (३) संस्कारविधि (४) वेदाङ्ग प्रकाश (५) पञ्च महायज्ञविधि (६) गो करुणानिधि (७) आर्य्योद्देश्य रत्नमाला (८) भ्रमोच्छेदन (९) भ्रान्तिनिवारण (१०) व्यवहारभानु (११) आर्याभिविनय (१२) वेद विरुद्धमत खण्डन (१३) स्वामी नारायण मत-खण्डन (१४) वेदान्ति ध्वान्त निवारण (१५) अनुभ्रमोच्छेदन (१६) संस्कृत वाक्य प्रवोध (१७) यजुर्वेद भाष्य (१८) ऋगवेद भाष्य (१९) पाखण्ड खण्डन (२०) अद्वैत मत खण्डन।

महर्षि के ग्रन्थों पर एक दृष्टि

(१) सत्यार्थप्रकाश

इसके दो भाग हैं, एक पूर्वार्द्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्धमें १० समुल्लास हैं और उनमें सत्य वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्या की गयी है और यह मण्डन भाग कहलाता है। उत्तरार्द्ध में चार समुल्लास हैं, जिनमें पुरानी जैनी, किरानी और कुरानी मत मतान्तरों पर विस्तृत समालोचना की गयी है। यह वस्तुतः खण्डन भाग कहलाता है। खण्डन भाग रोगी के लिये औषधि रूप है और मण्डन भाग नीरोगी पुरुषों के लिये पथ्यरूप है। इस पुस्तक के लिखने से महर्षि का यही प्रयोजन मालूम होता है कि वह मनुष्य जाति को अन्धकार से निकाल कर वैदिक सूर्य्य का प्रकाश दिखलाना चाहते थे। उन्होंने स्वयं इस पुस्तक में लिखा है कि "मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है।" उत्तरार्द्ध में महर्षि ने अपनी अकाट्य युक्तियों और प्रमाणों के बल से अवैदिक मतों का बलपूर्वक खण्डन किया है। इसी "सत्यार्थप्रकाश" के सम्बन्ध में स्वर्गीय श्रीयुत पं० गुरुदत्त जी एम० ए० कहा करते थे कि "यदि सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति का मूल्य १०००) रु० होता, तो भी मैं उसे अपनी सारी जायदाद बेच कर (भी) खरीदता, मैं जिधर देखता हूँ उधर ही 'सत्यार्थप्रकाश' में वह वह विद्या की बातें भरी पड़ी हुई पाता हूँ कि जिनका वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि चकित हो जाती है। मैंने ग्यारह बार "सत्यार्थ-प्रकाश" को विचार पूर्वक पढ़ा है और जब २ उसे पढ़ा, तब तब नये से नये अर्थों का भाव मेरे मन में हुआ है।"

(२) ऋगवेदादि भाष्य भूमिका

चारों वेदों के भाष्य को यह एक भूमिका है। इस भूमिका में संस्कृत लेख तो महर्षि का अपना है और हिन्दी अनुवाद पण्डितों का है। कई जगह पर इस अनुवाद में त्रुटियां भी रह गयी हैं। इस पुस्तक में वेदों की उत्पत्ति, गणित, तार, विमान आदि नाना विद्याओं का वेदों से बीज मन्त्र, वर्णाश्रमधर्म, पुनर्जन्म, प्रामाण्य-अप्रामाण्य ग्रन्थों का विषय, वैदिक अलङ्कारों और रूढ़ि अर्थवाची पौराणिक भाष्यकारों के भाष्यों और प्रश्नोत्तर रूप में वेदार्थ करने की शैली पर सार-गर्भित रीति से प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में उस समय के विख्यात समालोचक मुन्शी कन्हैयालाल जी अलखधारी लिखते हैं कि—"सत्य तो यह है कि बादशाहों के वचनों को समझने के लिये बादशाही दिमाग़ चाहिये और ऋृषीश्वरों के वचनामृत को समझने के लिये ऋषीश्वरों का दिमाग़ चाहिये। बादशाह और ऋषीश्वर कभी अनुचित और तर्कशून्य वचन नहीं कहते। स्वामी जी महाराज की इस पुस्तक द्वारा बदमाश की बदमाशी इस प्रकार से चली जायगी, जिस प्रकार हवा से बादल और गधे के सिर से सींग चले जाते हैं···मन्दभाग्य होगा वह मनुष्य जो श्री स्वामी जी महाराज की इस पुस्तक के लाभ से वञ्चित रहेगा।"

(३) संस्कारविधि

इस पुस्तक में सोलह संस्कारों का वर्णन है। इन संस्कारों के प्रताप से हमारे पूर्वज अपनी सन्तान को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उत्तम और सच्चरित्र बनाने का प्रयत्न करते थे। महर्षि ने प्राचीन प्रमाणों के आधार पर इस ग्रन्थ को रचा है। शान्तिदायक वेद मन्त्रों द्वारा आत्मिक प्रसन्नता और हवन यज्ञ द्वारा शारीरिक आरोग्यता प्राप्त होती है। "गर्भाधान" पहला संस्कार है और "अन्त्येष्टि कर्म" सबसे अन्तिम संस्कार है।

(४) वेदाङ्ग प्रकाश

यह व्याकरण शास्त्र है। महर्षि पाणिनि रचित अष्टाध्यायी व्याकरण शास्त्र का मूल आधार समझी जाती है। यह वेदाङ्गप्रकाश अष्टाध्यायी के अर्थ दर्शाने का साधन है। वेदार्थ जानने के लिये अष्टाध्यायी और निघण्टु आदि प्रधान साधन समझे जाते हैं। और इन प्रधान साधनों की उत्तमता दिखलाना और उनके पढ़ने की ओर रुचि उत्पन्न करना वेदाङ्गप्रकाश का मुख्य उद्देश्य है।

(५) पञ्च महायज्ञविधि

नित्यकर्मविधि का यह एक छोटीसी पुस्तक है। इसमें पांच महायज्ञों का विधान है। निम्न लिखित पञ्च महायज्ञ कहलाते हैं:—

(१) ब्रह्मयज्ञ (२) देवयज्ञ (३) पितृयज्ञ (४) भूतयज्ञ (५) नृयज्ञ ।

(६) गोकरुणानिधि

गऊ आदि मूक पशुओं के प्रतिनिधि रूप से महर्षि ने इस पुस्तक को लिखा है। इस पुस्तक के बनाने में महर्षि का जो अभिप्राय था, वह हम उन्हींके शब्दों में लिख देना पर्याप्त समझते हैं:—

"यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है कि जिस से गवादि पशु जहाँ तक सामर्थ्य हो, बचाये जावें और उनके बचाने से दूध घी और खेती के बढ़ने से सब को सुख बढ़ता है"

इस ग्रन्थ में महर्षि ने मांस खाने का बलपूर्वक निषेध किया है। महर्षि लिखते हैं कि "मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं"। "दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि मारने की विधि नहीं लिखी" इत्यादि

(७) आर्योद्देश्य रत्नमाला

जब जब और जहाँ जहाँ श्री स्वामीजी महाराज धर्मोपदेश करते थे, तो लोग उनसे प्राय: आर्य्य सिद्धान्तों के विषय में प्रश्न किया करते थे। इस कठिनाई के निवारणार्थ महर्षि ने अमृतसर में इस पुस्तक को प्रकाशित किया। इस लघु पुस्तक में महर्षि ने एक सौ सिद्धान्त रूपी रत्नों को इकट्ठा करके माला के रूप में पिरोया है। एक २ रत्न पर विचार करने से यह माला बहुत रमणीय प्रतीत होती है।

(८) भ्रमोच्छेदन और अनुभ्रमोच्छेदन

महर्षि ने काशी के प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्रि आदि पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ किये, और विजय प्राप्त की। कई मास तक श्री-स्वामी जी महाराज काशी में रह कर उपदेश करते रहे, परन्तु राजा शिवप्रसाद जी सितारह हिन्द को महर्षि के सामने आकर शास्त्रार्थ करने अथवा शङ्का समाधान करने का कभी साहस न हुआ। परन्तु ज्योंही श्री स्वामी जी काशी से चलने लगे, तो राजा साहिब ने एक पुस्तक बना और उस पर स्वामी विशुद्धानन्द की सम्मति लिखवा कर प्रकाशित कर दी। यदि राजा साहिब स्वामी विशुद्धानन्द की सम्मति न लिखवाते, तो महर्षि इसके उत्तर में एक अक्षर भी न लिखते, क्योंकि वह राजा साहिब को सर्वथा अयोग्य समझते थे। इन पुस्तकों में महर्षि ने राजा शिवप्रसाद जी के आक्षेपों का यौक्तिक समाधान किया है। कहा जाता है कि राय कन्हैयालाल एक्ज़ैक्यूटिव इञ्जीनियर के सुपुत्र लाला सेवाराम जी, बी० ए० ने श्री स्वामी जी महा-राज को लिखा था कि आपने इन पुस्तकों में नर्मी से काम नहीं लिया और राजा-

शिवप्रसाद जी के आक्षेपों की कड़ी समालोचना की है। इसके उत्तर में भी श्री-स्वामी जी ने उन्हें स्वर्गीय लाला साईंदास जी, प्रधान आर्य्य समाज लाहौर के द्वारा लिखा कि "मैं आज कल के कालेजों और स्कूलों का पढ़ा हुआ नहीं हूँ, जो मन में और हो और प्रकट में और हो। मैं तो जो कुछ मन में सत्य समझता हूँ, उसी को प्रकट करता हूँ, मुलम्माबाजी (दम्भ) और कुटिल नीति की बातें मुझे नहीं आतीं"।

(९) भ्रान्ति निवारण

महर्षि के वेद भाष्य पर पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने बड़े बड़े आक्षेप किये थे। महर्षि ने इस पुस्तक में उन तमाम आक्षेपों को निर्मूल सिद्ध करके दिखला दिया है

(१०) व्यवहार भानु

इस पुस्तक में "हमें कैसे व्यवहार करना चाहिये" इस विषय पर बहुत उत्तम रीति से प्रकाश डाला गया है।

(११) आर्य्याभिविनय

इस छोटी सी पुस्तक में महर्षि ने ऋग्वेद और यजुर्वेद से उद्धृत करके १०८ मन्त्रों की संक्षिप्त व्याख्या की है। इन मन्त्रों में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का प्रकार दिखलाया गया है। यह पुस्तक ईश्वर भक्तों के लिये अत्यन्त प्रिय और रोचक है, क्योंकि इस से आत्मा को शान्ति मिलती है। भक्त जनों के रोज़ाना पाठ के लिये बहुत उपयोगी है।

(१२) वेद विरुद्ध मत खण्डन

इस पुस्तक में वल्लभाचार्य मत को वेद विरुद्ध सिद्ध किया गया है। पहिले यह पुस्तक केवल संस्कृत में थी, परन्तु अब इसका हिन्दी अनुवाद भी नीचे दिया गया है।

(१३) स्वामी नारायण मत खण्डन

इसमें स्वामी सहजानन्द के चलाये हुए स्वामी नारायण मत का प्रश्नोत्तर रीति से खण्डन किया गया है।

(१४) वेदान्ति ध्वान्त निवारण

इस पुस्तक में महर्षि ने नवीन वेदान्तियों के "जीव ब्रह्म की एकता" और जगत् मिथ्या है" आदि सिद्धान्तों का बलपूर्वक खंडन किया है।

(१६) संस्कृत वाक्य प्रबोध

यह ग्रन्थ संस्कृत बोलने के सम्बन्ध में है जिसमें संस्कृत के वाक्य और उनके सामने उनका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। जल्दी छपने के कारण इसमें कई अशु-

छियाँ रह गई हैं। इस पर काशी के कई स्वार्थी पौराणिकों ने मिलकर असभ्य पुस्तक "अबोध निवारण" नाम से बनाया, परन्तु लिखने वाले को अपना नाम प्रकाशित करने का भी साहस न हुआ। महर्षि ने अपने पत्र मि० आ० शु० १३ बुध, सं० १९३७, ई० में मुं० बख़तावर सिंह को लिखा कि "जो संस्कृत वाक्य प्रबोध पर पुस्तक छपवाया है, सो बहुत ठिकानों में उनका लेख अशुद्ध है और कई एक ठिकानों में संस्कृत में अशुद्ध भी छपा है। इस अशुद्धि के कारण तीन हैं—एक शीघ्र बनना, मेरा चित्त स्वस्थ न होना, दूसरी भीमसेन के आधीन शोधने का (काम) होना और मेरा (उसे) न देखना, न प्रूफ़ को शोधना, तीसरे छापे खाने में उस समय कोई भी कम्पोज़ीटर बुद्धिमान् न होना, लैम्पों की न्यूनता होनी"।

(१६) पाखण्ड खण्डन

यह सात पृष्ठों की छोटी सी पुस्तक संस्कृत में महर्षि ने भागवत खण्डन विषय पर लिखी। सम्वत् १९२१, २२ में जब श्री स्वामी जी दो वर्ष तक आगरा में रहे, उन्हीं दिनों की यह पुस्तक लिखी हुई मालूम होती है। सब से पुरानी हस्तलिखित प्रति इसकी ज्येष्ठ २-९ ति० वा नक्षत्र सम्वत् १९२३, तदनुसार ७ जून सन् १८६६ की लिखी हुई पण्डित छगनलाल जी शास्त्री, कृष्णगढ़ निवासी के पास मौजूद थी। अजमेर से वापस जाकर सम्वत् १९२३ के अन्त में 'ज्वालाप्रकाश प्रेस आगरा' में पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव के प्रबन्ध में इस पुस्तक को कई हज़ार कापियाँ छपवाई गईं और पहिली बैशाख सम्वत् १९२४ के कुम्भ उत्सव पर अर्थात् १२ अप्रैल सन् १८६७ के उत्सव के अवसर पर हरिद्वार में इसे बेदाम बांटा गया। यह बहुत ही उत्तम संस्कृत भाषा में थी। दूसरी बार यह पुस्तक नहीं छपी।

(१७, १८) यजुर्वेद भाष्य और ऋग्वेद भाष्य

महर्षि ने प्रथम ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ किया। ऋग्वेद भाष्य की भूमिका में ही महर्षि लिखते हैं कि—

"आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेद की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके सम्वत् १९३४ मार्गशुक्ल ६ भौमवार के दिन (मङ्गलवार को) सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूँ"।

ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ के एक मास पश्चात् अर्थात् सम्वत् १९३४ पौष शु० १३ गुरुवार के दिन महर्षि ने यजुर्वेद भाष्य का आरम्भ किया। यजुर्वेद में कुल ४० अध्याय हैं और सब अध्यायों के मन्त्रों की संख्या १९८५ है। ऋषिवर ने

यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य किया। सम्वत् १९३९ में वैदिक यन्त्रालय अजमेर की ओर से एक विज्ञापन पत्र छपा था कि:—"सब सज्जनों को विदित हो कि श्री स्वामी जी महाराज ने यजुर्वेद भाष्य बना कर पूरा कर लिया है और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेद भाष्य भी इसी प्रकार शीघ्र ही पूरा होगा।" परन्तु हमारे भाग्य में यह कहां था कि महर्षि ऋग्वेद भाष्य को अन्त तक समाप्त कर लेते। उनकी मृत्यु ने इस कार्य को पूर्ण न होने दिया और सम्वत् १९४१ के चैत्र मास में वैदिक यन्त्रालय ने यह विज्ञापन दिया कि महर्षि यजुर्वेद का सम्पूर्ण और ऋग्वेद के पांच अष्टक भाष्य को छोड़कर परमधाम को पधार गये। यह स्मरण रहे कि ऋग्वेद में कुल आठ अष्टक हैं और एक एक अष्टक में आठ आठ अध्याय हैं, सब अध्याय मिलकर ६४ अध्याय होते हैं। आठों अष्टकों के सब वर्ग २०२४ होते हैं। इसमें कुल दश मण्डल हैं और दशों मण्डलों में ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०५८९ मन्त्र हैं। महर्षि का ऋग्वेद भाष्य सातवें मण्डल, पाचवें अष्टक के पाँचवें अध्याय के तीसरे मन्त्र तक का है।

इन दोनों भाष्यों में संस्कृत और हिन्दी दोनों प्रकार के लेख हैं। संस्कृत तो महर्षि की ओर से है, परन्तु हिन्दी की भाषा अनुवादक पण्डितों की बनाई हुई है। किसी किसी स्थल पर हिन्दी में महर्षि के संस्कृत भाष्य का अभिप्राय ठीक ठीक नहीं प्रकट किया गया और कहीं कहीं हिन्दी अर्थ संस्कृत अर्थ से भिन्न भी पाये जाते हैं, अतः महर्षि के संस्कृत अर्थों को ही प्रामाणिक समझना चाहिये।

(२०) अद्वैत मत खण्डन

मालूम होता है कि यह छोटी सी पुस्तक श्री स्वामी जी महाराज ने शास्त्रार्थ काशी के बाद रची और इसे एक हिन्दी मासिक-पत्र "कविवचन सुधा" में संस्कृत भाषा में हिन्दी अनुवाद सहित मुद्रित कराया। दूसरी बार नहीं छपी।

इसके अतिरिक्त शास्त्रार्थ काशी, शास्त्रार्थ हुगली, शास्त्रार्थ चान्दापुर, शास्त्रार्थ बरेली और शास्त्रार्थ जालन्धर के विषयों पर भी लिखे हुए ट्रैक्ट मिलते हैं।

महर्षि ने जुलाई वा अगस्त सन् १८८५ में पूना नगर में १५ व्याख्यान दिये थे जो उसी समय वहां के एक पत्र के सम्पादक महाशय ने लिखकर मरहट्टी भाषा में प्रकाशित कर दिये थे। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान ने सन् १८९३ में श्री पं० गणेशरामचन्द्र महाराष्ट्र ब्राह्मण से हिन्दी में अनुवाद करा कर प्रकाशित किये। इस समय यह व्याख्यान "उपदेश मञ्जरी" नाम की एक पुस्तक में मिलते हैं।

एक और अपूर्व ग्रन्थ महर्षि लिखने वाले थे

"वेदाङ्ग प्रकाश" के सन्धि विषय में महर्षि का यह लेख है कि:—

यह १८ प्रयोजन यहां संक्षेप से लिखे हैं, किन्तु इनको प्रमाण और विस्तार पूर्वक अष्टाध्यायी की भूमिका में लिखेंगे" ।

इससे मालूम होता है कि वेदाङ्ग प्रकाश के अतिरिक्त महर्षि अष्टाध्यायी का भाष्य करने का भी विचार रखते थे, परन्तु उनका देहान्त हो जाने से यह कार्य पूरा नहीं हो सका ।

आर्य्यसमाज के नियम

पाठकगण !

लाहोर में यह निश्चय हुआ था कि चूंकि आर्य्यसमाज के नियम जो बम्बई में बने थे, बहुत ही विस्तृत हैं, अतः छांटछूंट कर केवल दश नियम ही रक्खे गये, जो निम्न लिखित हैं:—

—सम्पादक

❀ ओ३म् ❀

आर्य्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३—वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्य्यों का परमधर्म्म है ।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहियें ।

६—संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

आर्यसमाज के उपनियम

नाम

१—इस समाज का नाम आर्यसमाज होगा।

उद्देश्य

२—इस समाज के उद्देश्य वही हैं जो इसके नियमों में वर्णन किये गये हैं।

आर्य

३—जो लोग आर्यसमाज में नाम लिखाना चाहें और समाज के उद्देश्य के अनुकूल आचरण स्वीकार करें वे आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकते हैं ⚘, परन्तु उनकी अठारह वर्ष से न्यून आयु न हो।

जो लोग आर्यसमाज में प्रविष्ट होंगे वे आर्य कहलावेंगे।

आर्यसभासद

४—(क)-जिनका नाम आर्यसमाज में सदाचार से एक वर्ष × रहा हो और वे अपने आय का शतांश ‡ वा अधिक, मासिक वा वार्षिक आर्यसमाज को दें † आर्य सभासद हो सकते हैं।

⚘ आर्यसमाज में नाम लिखाने के लिये मंत्री के पास इस प्रकार का पत्र लिखना चाहिये कि —"मैं प्रसन्नतापूर्वक आर्यसमाज के उद्देश्यों के (जैसे कि नियमों में वर्णन किये गये हैं) अनुकूल आचरण स्वीकार करता हूं मेरा नाम आर्यसमाज में लिखलें"।

परन्तु अन्तरङ्गसभा को अधिकार रहेगा कि किसी विशेष हेतु से उनका नाम आर्यसमाज में लिखना स्वीकार न करे।

× आर्यसभासद् बनने के लिये आर्यसमाज में वर्ष भर नाम रहने का नियम किसी व्यक्ति के लिये अन्तरङ्गसभा शिथिल भी कर सकती है।

(आर्यसमाज में वर्ष भर रह के आर्यसभासद् बनने का नियम आर्यसमाज के दूसरे वर्ष से काम में आवेगा)

‡ राजा, सरदार या बड़े बड़े साहूकार आदि को आर्यसभासद् बनने के लिये शतांश ही देना आवश्यक नहीं, वे एकबारगी वा मासिक वा वार्षिक अपने उत्साह के अनुसार दे सकते हैं।

† अन्तरङ्गसभा किसी विशेष हेतु से चन्दा न देनेवाले आर्य को भी आर्यसभासद् बना सकती है।

(ख) सम्मति देने का अधिकार केवल आर्य सभासदों को होगा + ।

५—जो आर्यसमाज के उद्देश्य के विरुद्ध काम करेगा वह न तो आर्य और न आर्य सभासद गिना जावेगा।

६—आर्यसभासद् दो प्रकार के होंगे—एक साधारण आर्य सभासद् और दूसरे माननीय सभासद् ।

माननीय सभासद् वे होंगे जो शतांश दस रुपए मासिक वा इससे अधिक दें वा एक बार २५०) रु० दें वा जिसको अन्तरङ्ग सभा विद्यादि श्रेष्ठ गुणों से माननीय समझे।

साधारण सभा

७—साधारण सभा तीन प्रकार की होगी:—

१—साप्ताहिक ।

२—वार्षिक ।

३—नैमित्तिक ।

साप्ताहिक साधारण सभा

८—(क)—यह सभा प्रत्येक सप्ताह में एक बेर हुआ करेगी।

(ख)—उसमें वेद मन्त्रों का पाठ, उपासना, भजन, कीर्तन और व्याख्यान हुआ करेंगे।

(ग)—जो कोई समाज सम्बन्धी मुख्य बात सभा के जानने योग्य हो वह भी उस सभा में कही जायगी।

वार्षिक साधारण सभा

६—(क)—यह सभा प्रति वर्ष एक बेर नीचे लिखे प्रयोजनों के लिये हुआ करेगी:—

१—समाज के वार्षिक उत्सव करने के लिये ।

२—अन्तरङ्गसभा के प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारियों के नियुक्त करने के लिये ।

३—समाज के पिछले वर्ष का वृत्तान्त सुनाने के लिये ।

+ नीचे लिखी गई विशेष दशाओं में उन आर्यों की भी, जो आर्यसभासद् नहीं, सम्मति ली जायगी।

(१) जब नियमों का न्यूनाधिक वा शोधन करना हो।

(२) जब किसी विशेष अवस्था में अन्तरङ्गसभा उनकी सम्मति लेनी योग्य और आवश्यक समझे।

(ख)—इस सभा के होने के समय आदि का विज्ञापन एक महीना पहिले दिया जावेगा।

नैमित्तिक साधारण सभा

१०—(क)—यह सभा जब कभी आवश्यकता हो किसी विशेष काम के लिये नीचे लिखी हुई दशाओं में की जायगी—

१—जब प्रधान और मन्त्री चाहें।

२—जब अन्तरङ्गसभा चाहे।

३—जब आर्यसभासदों का बीसवां अंश इस निमित्त मन्त्री के पास लिखकर पत्र भेजे।

(ख)—इस सभा के होने के समय आदि का विज्ञापन समयानुकूल पहले दिया जावेगा।

अन्तरङ्ग सभा

११—समाज के सब कार्य्यों के प्रबन्ध के लिये एक अन्तरङ्ग सभा नियुक्त की जावेगी और इसमें तीन प्रकार के सभासद् होंगे अर्थात् (१) प्रतिनिधि, (२) प्रतिष्ठित और (३) अधिकारी।

१२—प्रतिनिधि सभासद् अपने अपने समुदायों के प्रतिनिधि होंगे और उन्हें उनके समुदाय नियत करेंगे कोई समुदाय जब चाहे अपने प्रतिनिधि को बदल सकता है।

१३—सभासदों के विशेष काम ये होंगे:—

(क)—अपने अपने समुदायों की सम्मति से अपने को विज्ञ रखना।

(ख)—अपने अपने समुदायों को अन्तरङ्गसभा के काम, जो कि प्रकट करने योग्य हों, बतलाना।

(ग)—अपने अपने समुदायों से चन्दा इकट्ठा करके कोषाध्यक्ष को देना।

१४—प्रतिष्ठित-सभासद् विशेष गुणों के कारण प्रायः वार्षिक वा नैमित्तिक साधारण सभा में नियत किये जावेंगे, प्रतिष्ठित सभासद् अन्तरङ्गसभा में एक तिहाई से अधिक न होंगे।

१५—वर्ष वर्ष के पीछे अन्तरङ्ग सभा के प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारी वार्षिक साधारण सभा के फिर से नियत किये जायंगे। और कोई पुराना प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारी पुनर्वार नियत हो सकेगा।

१६—जब वर्ष के पहले किसी प्रतिष्ठित सभासद वा अधिकारी का स्थान

रिक्त (खाली) हो तो अन्तरङ्ग सभा आप ही उसके स्थान पर किसी और योग्य पुरुष को नियत कर सकेगी।

१७—अन्तरङ्ग सभा कार्य के प्रबन्ध निमित्त उचित व्यवस्था बना सकती है, परन्तु वे आर्यसमाज के नियमों और उपनियमों से विरुद्ध न हों।

१८—अन्तरङ्ग सभा किसी विशेष काम के करने और सोचने के लिये अपने में से सभासदों और विशेष गुण रखने वाले और सभासदों को मिला कर उपसभा नियत कर सकती है।

१९—अन्तरङ्ग सभा का कोई सभासद् मन्त्री को एक सप्ताह पहिले विज्ञापन दे सकता है कि कोई विषय सभा में निवेदन किया जावे और वह (विषय) प्रधान की आज्ञानुसार निवेदन किया जावेगा। परन्तु जिस विषय के निवेदन करने में अन्तरङ्ग सभा के पांच सभासद सम्मति दें वह अवश्य निवेदन करना ही पड़ेगा।

२०—दो सप्ताह पीछे अन्तरङ्ग सभा एक बेर अवश्य हुआ करेगी और मन्त्री और प्रधान की आज्ञा से वा जब अन्तरङ्ग सभा के पांच सभासद् मन्त्री को पत्र लिखें तो भी हो सकती है।

अधिकारी

२१—अधिकारी पाँच प्रकार के होंगे:—

(१) प्रधान, (२) उपप्रधान, (३) मन्त्री, (४) कोषाध्यक्ष, (५) पुस्तकाध्यक्ष।

२२—मन्त्री, कोषाध्यक्ष और पुस्तकाध्यक्ष इनके अधिकारों पर आवश्यकता होने से एक से अधिक पुरुष भी नियत हो सकते हैं और जब किसी अधिकार पर एक से अधिक पुरुष नियत हों तो अन्तरङ्ग सभा उन्हें काम बाँट देगी।

प्रधान

२३—प्रधान के नीचे लिखे अधिकार और काम होंगे:—

(१)—प्रधान अन्तरङ्ग सभा और समाज का और सब सभाओं का सभापति समझा जावेगा।

(२)—सदा समाज के सब कामों के यथावत प्रबन्ध करने में और सर्वथा समाज की उन्नति और रक्षा में तत्पर रहेगा, समाज के प्रत्येक कामों को देखेगा कि वे नियमानुसार किये जाते हैं वा नहीं और स्वयं नियमानुसार चलेगा।

(३)—यदि कोई विषय कठिन और आवश्यक प्रतीत हो तो उसका

यथोचित प्रबन्ध उसी समय करे। और उसके बिगड़ने में उत्तरदाता वही होगा।

(४)—प्रधान अपने प्रधानत्व के कारण सब उपसभाओं का, जिन्हें कि अन्तरङ्ग सभा संस्थापन करे, सभासद् होगा।

उपप्रधान

२४—उपप्रधान प्रधान के अनुपस्थित होने पर उसका प्रतिनिधि होगा। यदि दो वा अधिक उपप्रधान हों तो सभा की सम्मति अनुसार उनमें से कोई एक प्रतिनिधि किया जायेगा।

परन्तु समाज के सब कामों में प्रधान को सहायता देना उसका मुख्य काम होगा।

मन्त्री

२५—मन्त्री के नीचे लिखे गये अधिकार और काम होंगे:—

(१)—अन्तरङ्गसभा की आज्ञानुसार समाज की ओर से सब के साथ पत्रव्यवहार रखना और समाज सम्बन्धी चिट्ठी और सब प्रकार के विशिष्ट पत्रों को सम्भाल कर रखना।

(२)—समाज की सभाओं का वृत्तान्त लिखना और दूसरी सभा होने से पहले ही उसका वृत्तान्त पुस्तक में लिखना वा लिखवा देना।

(३)—मासिक अन्तरङ्गसभाओं में उन आर्य्यों वा आर्य्यसभासदों के नाम सुनाया करना जो पिछली मासिक सभा के पीछे आर्य्यसमाज में प्रवृष्ट हुये हों वा उससे पृथक् हुए हों।

(४)—सामान्य प्रकार से समाज के भृत्यों के काम पर दृष्टि रखना और समाज के नियम, उपनियम और व्यवस्थाओं के पालन पर ध्यान रखना।

(५)—पाठशाला की उपसभा के आज्ञानुसार पाठशाला का सामान्य प्रकार से प्रबन्ध करना।

(६)—इस बात का भी ध्यान रखना कि प्रत्येक आर्यसभासद् किसी न किसी समुदाय में हो और इसका कि प्रत्येक समुदाय ने अपनी ओर से अन्तरङ्गसभा में प्रतिनिधि दिया हो।

(७)—पहिले विज्ञापन दिये जाने पर माननीय पुरुषों को सभा में सत्कारपूर्वक बैठाना।

(८)—प्रत्येक सभा में नियत काल पर आना और बराबर ठहरना।

कोषाध्यक्ष

२६—कोषाध्यक्ष के नीचे लिखे अधिकार और काम होंगे:—

(१)—समाज के सब आय धन का लेना, उसकी रसीद देना और उसको यथोचित रखना।

(२)—किसी को अन्तरङ्गसभा की आज्ञा बिना रुपया न देना, वरम् मन्त्री और प्रधान को भी उस परिमाण से जितना कि अन्तरङ्ग सभा ने उनके लिये नियत किया हो अधिक न देना और उस धन के उचित व्यय के लिये वही अधिकारी, जिसके द्वारा वह व्यय हुआ हो, उत्तरदाता होगा।

(३)—सब धन के आयव्यय का रीतिपूर्वक बहीखाता रखना और प्रतिमास अन्तरङ्गसभा में हिसाब को बहीखाते समेत परताल और स्वीकार के लिये निवेदन करना।

पुस्तकाध्यक्ष

२७—पुस्तकाध्यक्ष के अधिकार और काम ये होंगे:—

पुस्तकालय में जो समाज की स्थिर पुस्तक और विक्रेय पुस्तक हों उन सब की रक्षा करे और पुस्तकालय सम्बन्धी हिसाब किताब रक्खे और पुस्तकों के लेने-देने, मंगवाने और बेचने का काम भी करे।

मिश्रित

२८—सब आर्यसभासदों की सम्मति पत्रद्वारा निम्नलिखित दशाओं में ली जायगी:—

(१)—जब अन्तरङ्गसभा का यह निश्चय हो कि समाज की भलाई के लिये किसी साधारण सभा के सिद्धान्त पर निर्भर न करना चाहिये, वरन् सब आर्य सभासदों की सम्मति जाननी चाहिये।

(२)—जब सब आर्यसभासदों का बीसवां वा अधिक अंश इस निमित्त मन्त्री के पास पत्र लिखकर भेजे।

(३)—जब बहुत से व्ययसम्बन्धी वा प्रबन्धसम्बन्धी वा नियम वा व्यवस्था सम्बन्धी कोई मुख्य प्रस्ताव करना हो, अथवा जब अन्तरङ्गसभा सब आर्यसभासदों की सम्मति जाननी चाहे।

२९—जब किसी सभा में वा थोड़े से समय के लिये कोई अधिकारी उपस्थित न हो तो उसके स्थान में उस समय के लिये किसी योग्य पुरुष को अन्तरङ्ग सभा नियत कर सकती है।

३०—किसी अधिकारी के स्थान पर वार्षिक साधारण सभा में कोई पुरुष नियत न किया जावे तो तब तक उसके स्थान पर कोई और नियत न किया जाय वही अधिकारी अपना काम करता रहेगा।

३१—सब सभा और उपसभाओं का वृत्तान्त लिखा जाया करेगा और उसको सब आर्यसभासद् देख सकेंगे।

३२—सब सभाओं का काम तब आरम्भ होगा जब एक तिहाई सभासद् उपस्थित हों।

३३—सब सभाओं और उप सभाओं के सारे काम बहुपक्षानुसार निश्चित होंगे।

३४—आय का दशांश समुदाय धन में रक्खा जावेगा।

३५—सब आर्य और आर्यसभासदों को संस्कृत वा आर्यभाषा (हिन्दी) जाननी चाहिये।

३६—सब आर्य और आर्यसभासदों को उचित है कि लाभ और आनन्द के समय समाज पर भी दृष्टि रक्खें।

३७—सब आर्य और आर्यसभासदों को उचित है कि शोक और दुःख के समय में परस्पर सहायता करें और आनन्द उत्सव में निमन्त्रण पर सहायक हों और छुटाई बड़ाई न गिनें।

३८—कोई आर्य भाई किसी हेतु से अनाथ हो जावे वा किसी की स्त्री विधवा वा सन्तान अनाथ हो जावे अर्थात् उसका किसी प्रकार जीवन न हो सकता हो और यदि आर्यसमाज इसको निश्चित जान ले तो आर्यसमाज उसकी रक्षा में यथाशक्ति यथोचित प्रबन्ध करे।

३९—यदि आर्यसमाज में किसी का आपस में झगड़ा हो तो उनको योग्य होगा कि वे उसको आपस में समझ लें वा आर्यसमाज की न्याय उपसभा द्वारा उसका न्याय करालें।

४०—यह उपनियम वर्ष वर्ष पीछे यथोचित विज्ञापन देने पर शोधे वा बढ़ाये-घटाये जा सकते हैं।

———

महर्षि दयानन्द का स्वीकार पत्र

(वसीयत नामा)

श्रीरामजी

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृत

स्वीकार पत्र की प्रति

आज्ञा (राज्ये श्रीमहद्राज सभा) संख्या २६०

आज यह स्वीकार पत्र श्रीमान् श्री १०८ श्री जी धीरवीर चिरप्रतापी विराजमानराज्ये श्रीमहद्राज सभा के सन्मुख स्वामी जी श्री दयानन्द सरस्वती जी ने सर्व-रीत्या अङ्गीकार किया अतएवः—

आज्ञा हुई—

कि प्रथम प्रति तो इस स्वीकार पत्र की स्वामी जी श्री दयानन्द सरस्वती जी को राज्ये श्री महद्राज सभा के हस्ताक्षरी और मुद्राङ्कित दी जावे और दूसरी लिपि उक्त सभा के पत्रालय में रहे और एक एक प्रति इसकी राज यन्त्रालय में मुद्रित होकर इस स्वीकार पत्र में लिखे सब सभासदों के पास उनके ज्ञानार्थ और इसके नियमानुसार वर्त्तने के लिये भेजी जावे संवत् १९३९ फाल्गुन शुक्ला ५ मङ्गलवार तदनुसार ता० २७ फेब्रुअरी सन् १८८३ ई०

हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य

(श्रीमेदपाटेश्वर और राज्ये श्रीमहद्राज सभापति)

राज्ये श्रीमहद्राजसभा के सभासदों के हस्ताक्षर—

१ राव तख्तसिंह बेदले

२ राव रत्नसिंह पारसोली

३ द० महाराज गजसिंह का

४ द० महाराज रायसिंह का

५ हस्ताक्षर मामा बख्तावरसिंहस्य

६ द० राणावत उदयसिंह

७ हस्ताक्षर ठाकुर मनोहरसिंह
८ हस्ताक्षर कविराज श्यामलदासस्य
६ हस्ताक्षर सहीवाला अर्जुनसिंह का
१० द० रा० पन्नालाल
११ ह० पुरोहित पद्मनाथस्य
१२ जा० मुकुन्दलाल
१३ ह० मोहनलाल पाण्ड्या

स्वीकार पत्र

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमानुसार त्रयोविंशति सज्जन आर्य्यपुरुषों की सभा का वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूँ और उस को परोपकार सुकार्य में लगाने के लिये अधिष्ठाता करके यह पत्र लिखे देता हूँ कि समय पर कार्यकारी हो। जो यह एक सभा कि जिसका नाम परोपकारिणीसभा है उसके निम्नलिखित त्रयोविंशति सज्जन पुरुष सभासद् हैं उनमें से इस सभा के सभापतिः—

१ श्रीमन्महाराजाधिराज महीमहेन्द्र यावदार्य्यकुलदिवाकर महाराणाजी श्री १०८ श्री सज्जनसिंह जी वर्म्मा धीरवीर जी० सी० एस० आई० उदयपुराधीश हैं, उदयपुर राज मेवाड़।

२ उपसभापति लाला मूलराज एम० ए० एक्स्ट्रा एसिस्टेण्ट कमिश्नर प्रधान आर्य्यसमाज लाहौर जन्मस्थान लुधियाना।

३ मन्त्री श्रीयुत कविराज श्यामलदासजी उदयपुर राज मेवाड़।

४ मन्त्री लाला रामशरणदास रईस उपप्रधान आर्य्यसमाज मेरठ।

५ उपमन्त्री पाण्ड्या मोहनलाल विष्णुलालजी निवास उदयपुर जन्मभूमि मथुरा।

सभासद

नाम और स्थान

१ श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंह जी वर्मा शाहपुरा राज मेवाड़
२ श्रीमत् राव तख्तसिंह जी वर्मा वेदला राज मेवाड़
३ श्रीमत् राज्यराणा श्री फतहसिंह जी वर्मा देलवाड़ा राज मेवाड़
४ श्रीमत् रावत अर्जुनसिंह जी वर्मा आसींद राज मेवाड़
५ श्रीमत् महाराज श्री गजसिंह जी वर्मा उदयपुर मेवाड़
६ श्रीमत् राव श्री बहादुरसिंह जी वर्मा मसूदा जिला अजमेर
७ रावबहादुर पं० सुन्दरलाल सुपरिन्टेन्डेन्ट वर्कशाप और प्रेस अलीगढ़ आगरा
८ राजा जयकृष्णदास सी० एस०आई० डिपुटी-कलेक्टर बिजनौर मुरादाबाद

९ बाबू दुर्गाप्रसाद कोषाध्यक्ष आर्यसमाज व रईस फर्रुखाबाद
१० लाला जगन्नाथप्रसाद रईस फर्रुखाबाद
११ सेठ निर्भयराम प्रधान आर्यसमाज फर्रुखाबाद विसाऊ राजपूताना
१२ लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद
१३ बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसर्यट छावनी मुरार कानपुर
१४ लाला साईंदास मन्त्री आर्यसमाज लाहौर
१५ बाबू माधवदास मन्त्री आर्य्यसमाज दानापुर
१६ रावबहादुर रा० रा० पंडित गोपालराव हरि देशमुख मेम्बर कौन्सिल गवर्नर बम्बई और प्रधान आर्यसमाज बम्बई पूना।
१७ रावबहादुर रा० रा० महादेव गोविन्द रानडे जज पूना
१८ पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनिवर्सिटी आक्सफोर्ड लन्दन बम्बई

नियम

१ उक्त सभा जैसे कि वर्तमानकाल वा आपत्काल में नियमानुसार मेरी और मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके सर्व हितकारी कार्य में लगाती है वैसे मेरे पश्चात् अर्थात् मेरे मृत्यु के पीछे भी लगाया करेः—

प्रथम—वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने-कराने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, छापने-छपवाने आदि में।

द्वितीय—वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मंडली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेज कर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में।

तृतीय—आर्यावर्तीय अनाथ और दीन मनुष्यों के संरक्षण पोषण और सुशिक्षा में व्यय करे और करावे।

२ जैसे मेरी विद्यमानता में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे मेरे पश्चात भी तीसरे या छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब-किताब समझने और पड़तालने के लिये भेजा करे, और वह सभासद् जाकर समस्त आय-व्यय और सञ्चय आदि की जांच पड़ताल करे, और उनके तले अपने हस्ताक्षर लिखदे, और उस विषय का एक एक पत्र प्रति सभासद के पास भेजे, और उसके प्रबन्ध में कुछ हानि लाभ देखे उसकी सूचना भी अपने परामर्श सहित प्रत्येक सभासद् के पास लिख भेजे। पश्चात् प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी-अपनी सम्मति सभापति के पास लिख कर भेजदे, और सभापति सब की सम्मति से यथो-

चित प्रबन्ध करे और कोई सभासद इस विषय में आलस्य अथवा अन्यथा व्यवहार न करे।

३ इस सभा को उचित है किन्तु अत्यावश्यक है कि जैसा यह परमधर्म और परमार्थ का कार्य है उसको वैसा ही उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता से करे।

४ मेरे पीछे उक्त त्रयोविंशति आर्य जनों की सभा सर्वथा मेरे स्थानापन्न समझी जाय, अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और रहे। यदि उक्त सभासदों में से कोई इन नियमों से विरुद्ध स्वार्थ के वश होकर वा कोई अन्य जन अपना अधिकार जतावे तो वह सर्वथा मिथ्या समझा जाय।

५ जैसे इस सभा को अपने सामर्थ्य के अनुसार वर्त्तमान समय में मेरी और मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा और उन्नति करने का अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के संस्कार करने-कराने का भी अधिकार है। अर्थात् जब मेरा देह छूटे तो न उसको गाड़ने, न जल में बहाने, न जङ्गल में फेंकने दे, केवल चन्दन की चिता बनावे। और जो यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पांच सेर कपूर, ढाई सेर अगर तगर और दश मन काष्ठ लेकर वेदानुकूल जैसे कि संस्कारविधि में लिखा है वेदी बनाकर, तदुक्त वेदमन्त्रों से होम करके, भस्म करे। इससे भिन्न कुछ भी वेदविरुद्ध क्रिया न करे। और जो सभाजन उपस्थित न हों तो जो कोई समय पर उपस्थित हो वही पूर्वोक्त क्रिया कर दे। और जितना धन उसमें लगे उतना धन सभा से ले ले और सभा उसको दे दे।

६ अपनी विद्यमानता में और मेरे पश्चात् यह सभा चाहे जिस सभासद को पृथक् कर के उसका प्रतिनिधि किसी अन्य योग्य सामाजिक आर्यपुरुष को नियत कर सकती है। परन्तु कोई सभासद् सभा से तब तक पृथक् न किया जाय जब तक उसके कार्य में अन्यथा व्यवहार न पाया जाय।

७ मेरे सदृश यह सभा सदैव स्वीकारपत्र की व्याख्या, वा उसके नियम और प्रतिज्ञाओं के पालन, वा किसी सभासद् के पृथक् और उसके स्थान में अन्य सभासद् के नियत करने, वा मेरे विपत् और आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो समस्त सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय पाया वा पावे। और जो सम्मति में परस्पर विरोध हो तो बहुपक्षानुसार प्रबन्ध करे। और सभापति की सम्मति को सदैव द्विगुण जाने।

८ किसी समय भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को अपराध की परीक्षा कर पृथक् न कर सके जब तक पहिले तीन के प्रतिनिधि नियत न करले।

९ यदि सभा में से कोई पुरुष मरजाय वा पूर्वोक्त नियमों और वेदोक्त धर्मों को त्याग कर विरुद्ध चलने लगे तो इस सभा के सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से पृथक् करके उसके स्थान में किसी अन्य योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्य पुरुष को नियत करदे परन्तु जबतक नित्यकार्य के अनन्तर नवीन कार्य का आरम्भ न हो।

१० इस सभा को सर्वथा प्रबन्ध करने और नवीन युक्ति निकालने का अधिकार है। परन्तु जो सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा २ निश्चय और विश्वास न हो पत्र द्वारा समय नियत करके सम्पूर्ण आर्यसमाजों से सम्मति ले ले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

११ प्रबन्ध न्यूनाधिक करना वा स्वीकार वा अस्वीकार करना वा किसी सभासद् को पृथक् वा नियत करना वा आय-व्यय और सञ्चय का जांच पड़ताल करना आदि लाभ-हानि सब सभासदों का वार्षिक वा षाण्मासिक पत्रद्वारा सभापति छपवा कर विदित करे।

१२ इस स्वीकार पत्र सम्बन्धी कोई झगड़ा टंटा सामयिक राज्याधिकारियों की कचहरी में निवेदन न किया जाय। यह सभा अपने आप न्यायव्यवस्था करले। परन्तु जो अपनी सामर्थ्य से बाहर हो तो राज्यगृह में निवेदन करके अपना कार्य सिद्ध करले।

१३ यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्य्यजन को पारितोषिक अर्थात् पेनशन देना चाहूँ और उसकी लिखत पढ़त कराके रजिस्टरी करादूँ तो सभा को उचित है कि उसको माने और दे।

१४ किसी विशेष लाभ, उन्नति, परोपकार और सर्व हितकारी कार्य के वश मुझे और मेरे पीछे सभा को उपरोक्त नियमों के न्यूनाधिक करने का सर्वथा सदैव अधिकार है।

ह० दयानन्द सरस्वती।

महर्षि दयानन्द का ईश्वर-विश्वास

"जो मैं निरनिरी संसार ही का भय करता और सर्वज्ञ परमात्मा का कुछ भी नहीं कि जिसके आधीन मनुष्य के जीवन, मृत्यु और सुख दुःख हैं, तो मैं भी ऐसे ही अनर्थक वाद-विवादों में मन (दे) देता; परन्तु क्या करूं ? मैं तो अपना

तन, मन, धन सब (कुछ) "सत्य" के ही प्रकाशार्थ समर्पण कर चुका। मुझसे खुशामद करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता, किन्तु संसार को लाभ पहुँचाना ही मुझको चक्रवर्ती राज्य के तुल्य है"।

"मैंने इस धर्म-कार्य का सर्व-शक्तिमान, सत्य-ग्राहक और न्याय-सम्बन्धी परमात्मा के शरण में शीश धर के उसीके सहाय के अवलम्ब से आरम्भ किया है।"

(भ्रान्ति निवारण, भूमिका, पृष्ट १)

महर्षि की दीक्षा

"आर्य्य धर्म की उन्नति के लिये मुझ जैसे बहुतसे उपदेशक आपके इस देश में होने चाहियें। ऐसा काम अकेला आदमी भली प्रकार नहीं कर सकता, फिर भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया है, कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार जो कुछ दीक्षा ली है उसे चलाऊंगा"

(महर्षि का स्वयं-कथित जीवन चरित्र, १५, व्या० पूना)

"परोपकार" करना ही महर्षि का "परम पुरुषार्थ" था

"हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं। जिस पहाड़ पर कि पुरानी अलकापुरी थी, उस पर भी मैं इस विचार से गया था कि एक बार ही अपना शरीर बर्फ में गला कर संसार के धन्धों से निवृत्त हो जाऊँ, परन्तु वहां पहुँच कर विचार में आया कि इस जगह मर जाना तो कोई पुरुषार्थ नहीं है। हां ज्ञान प्राप्त करके परोपकार करना "पुरुषार्थ (जरूर) है। इस विश्वास के बदलने पर (मैं) लौट आया था। अब तो विदित होता है कि जीवात्मा की मृत्यु ही नही है।

(पूना का व्या० १०, इतिहास विषय)

महर्षि मान और प्रतिष्ठा के इच्छुक न थे

"मैं अपने सामर्थ्य के अनुसार वेद का उपदेश करता हूँ। सिवाय उपदेशक के और मैं कुछ अधिकार नहीं चाहता। तुम मुझको कहीं सभासद लिख देते हो, कहीं कुछ लिख देते हो। मैं कुछ बड़ाई और प्रतिष्ठा नहीं चाहता और जो मैं चाहता हूँ, वह "बहुत बड़ा काम" है। सो आशा है कि ईश्वर की दया से और सज्जन तथा विद्वानों की सहायता से कृतकृत्य हूँगा।"

(महर्षि के पत्र ति० १६ मार्च १८७७ ई०
करनैल आलकाट साहेब के नाम से उद्धृत)

"सत्य" का प्रचारक दयानन्द

"मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन "सत्य, सत्य अर्थ का प्रकाश करना है।"

(वह "सत्य" क्या है ?)

"जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना, और मानना "सत्य" कहाता है।

"जो 'सत्य" है, उसको "सत्य" जो मिथ्या है, उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना (मैंने) सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है । वह "सत्य" नहीं कहाता जो "सत्य" के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में "सत्य" का प्रकाश किया जाय।"

"जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी "सत्य" और दूसरे विरोधी मत वाले के "सत्य" को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिये वह "सत्य" मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि (वे) उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने "सत्यासत्य" का स्वरूप समर्पित कर दें।"

"इस ग्रन्थ में ऐसी (कोई) बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, "सत्यासत्य' को लोग जानकर "सत्य" का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि "सत्योपदेश" के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।"

(सत्यार्थप्रकाश, भूमिका)

"यह लेख केवल "सत्य" की वृद्धि और असत्यके ह्रास होनेके लिये है, न कि किसी को दुःख देने वा हानि करने, अथवा मिथ्या दोष लगानेके अर्थ ...... जो सर्वमान्य "सत्य विषय हैं, वे तो सबमें एक से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है।"

(सत्यार्थप्रकाश, अनुभूमिका ३)

महर्षि अपना कोई नवीन मत चलाना नहीं चाहते थे।

"(सर्वतन्त्र सिद्धान्त, अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म) जिसको आप्त, अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपात--रहित विद्वान्—मानते हैं, वही सब को मन्तव्य, और जिस को (वे) नहीं मानते, वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्य-शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि

मुनि पर्य्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं, जिन को कि मैं भी मानता हूँ, (और) सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ। मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सब को एकसा मानने योग्य है। मेरी कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो "सत्य" है, उसको मानना, मनवाना, और सो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता, तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता, किन्तु जा २ आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्म-युक्त चाल चलन है, उनका स्वीकार, और जो धर्म-युक्त बातें हैं, उनका त्याग नहीं करता, (और) न करना चाहता हूँ, क्योंकि ऐसा करना मनुष्य-धर्म से बहिः है। मनुष्य उसी को कहना (चाहिये) कि (जो) मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ, निर्बल, और गुण-रहित क्यों न हों, उन की रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्त्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे, अर्थात् जहाँ तक हो सके, वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपन-रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे"।

(सत्यार्थ प्रकाश, स्वमन्तव्यामतव्य प्रकाशः)

"जो २ बात सब के सामने माननीय है, उनको मानता, अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं, उनको मैं पसन्द नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिया है। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके, सब से सब को सुख-लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा "मुख्य प्रयोजन" है।

(सत्यार्थ प्रकास स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश)

विरोध हटाना महर्षि का "मुख्य कर्म" था

"यह लेख (अर्थात मुसलमानों के विषय में "सत्यार्थप्रकाश" का चौदहवां-समुल्लास, सम्पादक) हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद विवाद और विरोध हटाने के लिये किया गया है, न कि इन को बढ़ाने के अर्थ, क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक रह (कर) परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा "मुख्य कर्म" है"।

(सत्यार्थ प्रकाश, अनुभूमिका, ४)

"जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपात-रहित होकर प्रकाशित करता रहूँ, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें, तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर, आनन्द में एकमत होके "सत्य" की प्राप्ति सिद्ध हो"।

(सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास, १४)

पक्षपात-रहित होकर ही महर्षि समालोचना करते थे

"यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही (मैं) दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ। जैसा मैं स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है, क्योंकि मैं भी जो किसी एक (मत) का पक्षपाती होता, तो जैसे आज कल के (लोग) स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते (हैं) और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं"।

(सत्यार्थप्रकाश, भूमिका)

गुण-ग्राही दयानन्द

ऋषिवर जहां स्वदेश वालों की बुरी बातों की निन्दा करते थे, वहां वह पूर्ण निष्पक्षता से विदेशियों के गुणों की प्रशंसा भी करते थे। (सम्पादक)

"भीष्म जैसे विद्वान्—और धर्मवादी पुरुष पक्षपातके रोग में ग्रसित हो गये। उनको उचित तो यह था कि वह मध्यस्थ होकर दोनों पक्षों का न्याय करते और अपराधियों और अन्यायियों को दंड दिलाते, (परन्तु) ऐसा न करके उन्होंने अन्यायियों का पक्ष करके कुरु-वंशका नाश होने दिया। देखिये ! भीष्म क्या कहते हैं:—

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति मत्वा महाराज ! बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

भीष्म पितामह जैसे योग्य मनुष्य का यह कहना कि "मैं अर्थ से बंधा हुआ कौरवों की ओर से युद्ध करने लगा हूँ", कैसा घृणा के योग्य मालूम होता है……… इस देश में यदि घर में फूट उत्पन्न होकर कुल का विनाश होंगया, तो आश्चर्य की कौनसी बात है ? इसी प्रकार जिस देश में केवल सत्य के अभिमान से मार्टिन लूथर जैसे उदारचेता पुरुषों ने सामयिक लोगों के विरुद्ध होते हुए भी पोप के अत्याचारों के विरुद्ध उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया और अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिये उद्यत हो गये, (फिर यदि) उस देश में ऐश्वर्य्य और अभ्युदय का डंका बजा, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है"।

(पूना का व्या० १२, इतिहास विषय)

ऋषिवर बुरे मनुष्यों के साथ भी भलाई करते थे

१—"कुछ चिन्ता मत करो। जिन का सहाय धर्म है, उसी का सहाय परमेश्वर है। जब बुरे बुराई न छोड़ें, तो भले भलाई क्यों छोड़ें ?"

(ऋषि के पत्र मि० चै० शु० ६, रविवार, संवत् १६४०,
शाहपुरा से श्रीयुत बिहारीलाल के नाम से उद्धृत)

२—"क्या किया जाय ? जिनके लिये (हम) उपकार करते हैं, वे ही उलटे विरोध ही करते जाते हैं। अच्छा, जो दुष्ट दुष्टता को नहीं छोड़ते, तो श्रेष्ठ श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें ?

(ऋषि के पत्र मि० श्रा० ब० ६, मंगलवार, मसूदा से
बाबू छेदीलाल के नाम से उद्धृत)

३—"जो मूर्ख लोग अपनी बुराई को नहीं छोड़ते, तो बुद्धिमान् धर्मात्मा लोग अपनी धर्मात्मता को क्यों छोड़ कर दुःख सागर में पड़ें ?

(महर्षि के पत्र, मि० ज्ये० शु० १४, बुध० सं० १६३६,
बाबू नन्दकिशोर सिंह जी के नाम से उद्धृत)

ऋषि दयानन्द का अन्यायाचरण के साथ असहयोग

"चाहे कोई हो, जबतक मैं (उसमें) न्यायाचरण देखता हूँ, (तबतक उसके साथ) मेल करता हूँ, और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है, फिर उससे (मैं) मेल नहीं करता, इसमें (चाहे) कोई हरिश्चन्द्र हो वा अन्य कोई हो।"

(ऋषि के पत्र ता० १६ मार्च १८७७ ई० करनैल
आलकाट साहेब के नाम से उद्धृत)

ऋषि का अयोग्य पुरुषों के साथ असहयोग

पाठकगण !

महर्षि दयानन्द ने काशी के प्रसिद्ध सन्यासी स्वामी विशुद्धानन्द जी और बाल शास्त्री जी आदि पौराणिक पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ किये, परन्तु राजा शिव-प्रसाद जी सितारह हिन्द कभी महर्षि के सामने शास्त्रार्थ के लिये नहीं आये। एक बार साधारण रीति पर श्री स्वामी जी से राजा साहिब का समागम हो गया। इस के पश्चात् श्री स्वामी जी ४ मास तक काशी में ठहरे रहे, परन्तु राजा साहिब उनसे न मिले। परन्तु जब श्री स्वामी जी महाराज काशी से चलने लगे, तो राजा साहिब ने स्वामी विशुद्धानन्द जी की सम्मति लिखवा कर एक पुस्तक छपवा डाली। इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द कृत "ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका" नामी पुस्तक पर कुछ अनुचित आक्षेप किये गये। इस पुस्तक के लिखने वाले वास्तव में तो स्वामी विशुद्धानन्द जी ही थे, क्योंकि राजासाहिब स्वयं अयोग्य थे, अतः ऋषि दयानन्द ने इसके उत्तर में "भ्रमोच्छेदन" नामी एक पुस्तक लिखी जिसमें ऋषिवर लिखते हैं:—

"जब इस वचनानुसार राजा जी को अयोग्य जान कर लिख कर उत्तर नहीं दिये, तो फिर क्या मैं ऐसे मनुष्यों से शास्त्रार्थ करने को प्रवृत्त होसकता हूँ ? हाँ, मैं अपरिचित मनुष्यों के साथ, चाहे कोई धर्म से पूछे, अथवा अधर्म से उन सबों के समाधान करने को एक बार तो प्रवृत्त हो ही जाता हूँ। परन्तु उस समय जिस को (मैं) अयोग्य समझ लेता हूँ, (तो) जबतक वह अपनी अयोग्यता को छोड़ कर न पूछता और न कहता है, तबतक (मैं) उससे सत्यासत्य निर्णय के लिये कभी प्रवृत्त नहीं होता हूँ। हाँ, जो सब विद्वानों को योग्य है, वह काम तो करता ही हूँ, अर्थात् जब२ अयोग्य पुरुष मुझसे मिलता वा मैं उससे मिलता हूँ, तब २ प्रथम उसकी अयोग्यता के छुड़ाने में प्रयत्न करता हूँ। जब वह धर्मात्मता से योग्य होता है, तब मैं उसको प्रेम से उपदेश करता हूँ, (और) वह भी प्रेम से पूछ के निस्सन्देह होकर आनन्दित हो जाता है।"

(भ्रमोच्छेदन)

आर्य्यभाषा की उन्नति और गोरक्षार्थ ऋषि का प्रयत्न

पाठकगण !

उन दिनों आर्य्य भाषा के प्रचारार्थ एक कमीशन नियत हुआ था। ऋषिवर आर्य्य भाषा को राजकार्य में प्रवृत्त कराना चाहते थे, अतः वह आर्य्य भाषा और

गोरक्षा के लिये एक मेमोरियल भिजवाने का प्रबन्ध कर रहे थे। इसके सम्बन्ध में उन्होंने उदयपुर से एक पत्र ता० १४ अगस्त, सन् १८८२ ई० लाला कालीचरण, रामचरण को लिखा, जिसमें ऋषिवर लिखते हैं:—

"गोरक्षार्थ कितनी सही हो चुकी, इसका उत्तर लिखना। इस समय (आर्य-भाषा के) राज कार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं, सो शीघ्र भेजना। और आप लोग भी जहांतक हो सके, गो रक्षार्थ सही और आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये।"

दूसरा पत्र

"दूसरी अति शोक करने की यह बात है कि आजकल सर्वत्र अपनी आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ (भाषा के प्रचारार्थ जो कमीशन हुआ है) उसमे पञ्जाब हाथा आदि से मेमोरियल भेजे गये हैं, परन्तु मध्यप्रान्त, फर्रुखाबाद, कानपुर, बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गये, ऐसा ज्ञात हुआ है। और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र आया था, उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गये। और हमको लिखा है कि आप इस विषय में प्रयत्न कीजिये। अब कहिये, हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं? जो यही एक काम हो तो कुछ चिन्ता नहीं। इसलिये आपको अति उचित है कि मध्य देश में सर्वत्र पत्र भेज कर बनारस आदि स्थानों से और जहां जहां परिचय हो, सब नगर वा ग्रामों से मेमोरियल भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं और अवसर चूके, वह अवसर (फिर) आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जावेगी। आप स्वयं बुद्धिमान हैं, इसलिये विशेष लिखना आवश्यक नहीं और गोरक्षार्थ कितनी सही हुई है, इस विषय में ध्यान देना अवश्य है। बड़े हर्ष के यह दोनों विषय प्रकाशित हुए हैं, इसलिये जहाँ लौं हो सके, तन, मन, धन से सब आर्यों को अति उचित है (कि) इन दोनों केसिद्ध करने में प्रयत्न करें। बारम्बार ऐसा ही निश्चय होता है कि यह दो सौभाग्य कारक अंकुर आर्यों के कल्याणार्थ उगे हैं। अब (यदि) हाथ पसार (कर) न लेवे, तो इससे दुर्भाग्य (की) दूसरी क्या बात होगी।"

ऋषिवर के पत्र ति० शुद्ध श्रावण शुक्ल ३, बृहस्पति सम्वत् १९३९, उदयपुरसे श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसादजी के नाम से उद्धृत)

तीसरा पत्र

"जो एक पत्र बहुत दिन हुए, मैंने लिखा था जिसमें गो रक्षार्थ अर्जी देने का

मसोदा वहां के वकील, बारिस्टरों से पूंछ के आप लिखें, उसका क्या हुआ। अब उसमें अधिक विलम्ब करना उचित मैं नहीं समझता"।

(महर्षि के पत्र श्रीयुत महाशय मनोहरदास जी खत्री, भारतमित्र कलकत्ता के नाम से उद्धृत)

महर्षि का समय कितना अमूल्य था ?

"किसी प्रकार की भ्रांति वा शंका मेरे लेख पर होकर वृथा कुतर्क खड़ी करके कोई मनुष्य मेरे काल को न खोवे कि जिससे देश भर की हानि हो"।

(भ्रांति निवारण पृष्ठ १)

"इसलिये यद्यपि मेरा बहु अमूल्य समय ऐसे तुच्छ कामों में खर्च होना न चाहिये"।

(भ्रांति निवारण पृष्ठ २)

"आगे को मनुष्यों को प्रकट होजाय कि ऐसी २ व्यर्थ कुतर्क फिर खड़ी करके मेरा काल न खोवें"।

(भ्रांति निवारण पृष्ठ २)

"फिर निष्प्रयोजन मेरा सर्वहितकारी काल क्यों खोते हो"।

(भ्रांति निवारण भूमिका)

महर्षि नाटक तमाशे के विरोधी थे

"नाटक का विषय नाम मात्र भी "भारत सुदशा प्रवर्त्तक" में न छपना चाहिये। नाटक तमाशे का (नाम) है, क्योंकि तुम्हारे नाटक को देख के लखनऊ के समाज में नाटक का व्याख्यान हो होने लगा। जब हमने मना किया तो कहने लगे कि आप के फर्रुखाबाद समाज के पत्र में नाटक क्यों छपता है ? यह नाटक से बिगाड़ का उदाहरण है"।

(महर्षि के पत्र मि० मार्गवदी १४ शनिवार सम्वत् १९३९ उदयपुर से श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसादजी के नाम से उद्धृत)

नोट—उपर्युक्त पत्र में श्री स्वामी जी महाराज ने लखनऊ समाज में नाटक के व्याख्यान की ओर संकेत किया है। इसके विषय में निवेदन है कि पं० इन्द्रनारायण जी प्रधान आर्यसमाज लखनऊ के पत्र ता० २८ अक्टूबर सन् १८८२ के पढ़ने के पश्चात् ही उदयपुर से श्रीयुत दुर्गाप्रसाद जी को श्री स्वामी जी ने उपर्युक्त पत्र लिखा था। प्रधान जी लिखते हैं कि पंडित केशवराम जी ने सभा की अनुमति लेकर एक देशोन्नति विषयक एक नवीन नाटक पढ़ा…………उस समय को छोड़कर अद्यपर्यन्त नाटकाकार पुस्तक से

कोई विषय नहीं पढ़ा गया। परन्तु यह कहना कि नाटकाकार विषय न पढ़े जावें, यह तब हो सकता है कि जब 'भारत सुदशा प्रवर्त्तकादि' पत्रों में नाटकाकार विषय मुद्रित न हो"।

(सम्पादक)

महर्षि दयानन्द की विद्वता

"क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त अनुमान से तीन हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ"।

(भ्रांति निवारण पृष्ठ ४)

पाठकगण! इससे महर्षि की विद्वत्ता प्रकट होती है। पूर्ण योगी और पूर्ण ब्रह्मचारी होने के कारण ही वह समस्त विद्याओं के मर्मज्ञ थे और उनका बोध बहुत विशाल और गम्भीर था। जब वह तीन हजार के लगभग प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं तो आश्चर्य नहीं कि उन्होंने इससे दुगनी तिगनी संख्या में ग्रन्थ पढ़े होंगे। महर्षि व्याकरण, ज्योतिष, गणित और पदार्थ विद्या आदि नाना विद्याओं के अपूर्व ज्ञाता थे और इसी कारण वह प्राचीन ऋषियों की शैली पर वेद भाष्य करने में पूर्ण समर्थ थे।"

(सम्पादक)

महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की अपूर्वता

"यह (वेद) भाष्य पाचीन आचार्य्यों के भाष्यों के अनुकूल बनाया जाता है, परन्तु जो रावण, उवट, सायण, और महीधर आदि ने भाष्य बनाये हैं, वे सब मूल मन्त्र और ऋषि-कृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं। मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता, क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी, और जो यह मेरा भाष्य बनता है, सो तो वेद, वेदाङ्ग, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अनुसार होता है, क्योंकि जो २ वेदों के सनातन व्याख्यान हैं, उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है, यही इसमें अपूर्वता है।"

"दूसरा इनके अपूर्व होने का कारण यह भी है, कि इसमें कोई बात अप्रमाण वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती, और जो २ भाष्य उवट, सायण, महीधरादि ने बनाए हैं, वे सब मूलार्थ और सनातन वेद व्याख्यानों से विरुद्ध हैं। तथा जो २ इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंग्रेजी, जर्मनी, दक्षिणी, और बंगाली आदि भाषाओं में वेद व्याख्यान बने हैं, वे भी अशुद्ध हैं, जैसे देखो। सायणाचार्य्य ने वेदों के श्रेष्ठ अर्थों को नहीं जान कर कहा है कि "सब वेद क्रिया काण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं" यह उनकी बात मिथ्या है"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, भाष्य करण शङ्कासमाधानादि विषय)

"परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर (यदि) बना रहा और कुशलता से वह दिन देख (ना) मिला कि वेद भाष्य संपूर्ण हो जावे, तो निस्सन्देह इस आर्य्यावर्त्त देश में सूर्य्य का सा प्रकाश हो जावेगा कि जिसके मेटने और झांपने को किसी का सामर्थ्य न होगा, क्योंकि सत्य का मूल ऐसा नहीं कि जिस को कोई सुगमता से उखाड़ सके और (यदि) कभी भानु के समान ग्रहण में भी आ जावे, तो थोड़े ही काल में फिर उग्रह, अर्थात् निर्मल हो जावेगा" ।

(भ्रान्ति निवारण, पृष्ठ ४)

महर्षि की दृष्टि में पश्चिमी विद्वानों की योग्यता

"अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्य्यावर्त्त देश में है, उतना किसी अन्य देश में नहीं । जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है, और जितनी संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं, उतनी कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहने मात्र है । क्योंकि "निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते", अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता, उस देश में अरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं, वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर-साहिब ने थोड़ा सा पढ़ा, वही उस देश के लिये अधिक है, परन्तु (यदि) आर्य्यावर्त्त देश की ओर देखें, तो उनकी बहुत न्यून गणना है, क्योंकि मैंने जर्मनी देश निवासी के एक "प्रिंसिपल" के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं । और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देखकर मुझ को विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर उधर आर्य्यावर्त्तीय लोगों की की हुई टीका देख कर कुछ २ यथा तथा लिखा है.............इतने से जान लीजिये कि जर्मनी देश, और मोक्षमूलर साहब में संस्कृत विद्या का जितना पाण्डित्य है" ।

(सत्यार्थप्रकाश, स० ११)

"डाक्टर एम० (हाग) साहब, वा सी० एच० टानी साहब, वा आर० ग्रिफिथ आदि कुछ ईश्वर नहीं कि जो कुछ वे लिख चुके, वह बिना परीक्षा वा विचार के मान लेने योग्य ठहरे । क्या डाक्टर एम० हाग साहब हमारे आर्य्य ऋषि मुनियों से बढ़ कर हैं कि जिन को हम सर्वोपरि मान (कर) निश्चय करलें और प्राचीन सत्य ग्रंथों को छोड़ देवें, जैसा कि पंडित जी (अर्थात् पं० महेशचन्द्र जी न्यायरत्न,

सम्पादक) ने किया है। जो उन्हों ने ऐसा किया, तो किया करो, मेरी दृष्टि में तो वे जो कुछ हैं, सो ही हैं"।

(भ्रान्ति निवारण, पृष्ठ १०)

महर्षि की दृष्टि में सायणाचार्यादिकों का बोध

महर्षि दयानन्द के पत्र तिथि संवत् १९३१, मिती फाल्गुन, शुक्ल ६, मंगलवार, से उद्धृत, जो उन्होंने मुम्बई से श्रीयुत गोपाल राव हरि देश मुख को लिखाः—

("इन्दु प्रकाश" के सम्पादक विष्णु शास्त्री को मध्यस्थ बनाने के विषय में ऋषि-वर लिखते हैं)

"और यह विष्णु शास्त्री धूर्त, विद्याहीन, हठी, दुराग्रही (और) मिथ्याचारी है, इसमें सन्देह नहीं..........आप लोग इन नष्ट बुद्धि वाले पक्षपातियों को पूछते हैं निश्चय करने को, सो (जब) सायणाचार्यादिकों को ही यथावत् वेदार्थ का बोध नहीं है, तो उनके पीछे चलने वालों को यथावत् ज्ञान कहाँ से होगा ? इसी लिये इन धूर्तों को मध्यस्थ हम नहीं करते"।

ऋषि दयानन्द का स्वा० विशुद्धानन्द और बालशास्त्री आदि पण्डितों को शास्त्रार्थ का खुला चैलेंज

"इसलिये मैं सब को सूचना करता हूँ कि जो मेरे पक्ष से विरुद्ध अपना पक्ष जानते हों, तो प्रसिद्ध होकर शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते और टट्टी की आड़ में स्थित होकर ईंट पत्थर फेंकने वाले के तुल्य कर्म करना क्यों नहीं छोड़ते ?"

"उत्तम तो यह है कि वे दोनों (अर्थात् स्वा० विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्री जी,—सम्पादक) आप को (अर्थात राजा शिवप्रसाद जी सितारह हिन्द को,—सम्पादक) ढाल बना कर न लड़े, किन्तु सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करें, इसी में उनकी शोभा है, अन्यथा नहीं"।

"मैं परमेश्वर को साक्षी से सत्य कहता हूँ कि जो ऐसा वे करें (अर्थात् स्वा० विशुद्धानन्द जी वा बाल शास्त्री जी आदि काशी के सब विद्वान् और बुद्धिमान् मिलकर राजा शिवप्रसाद जी का पक्ष लेकर स्वामी दयानन्द जी से शास्त्रार्थ वा लेख करें।—सम्पादक) तो मैं अत्यन्त प्रसन्नताके साथ सबको विदित करता हूँ कि यदि यह बात कल होती हो, तो आज ही होवे। जो ऐसी इच्छा मेरी न होती तो मैं काशी में विज्ञापन पत्र क्यों लगवाता और स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा बालशास्त्री जी को प्रतिपक्षी स्वीकार क्यों करता ?"

"सर्वोत्तम तो यह है (कि) जो मैं और वे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करें, तो शीघ्र सत्य वा झूठ का सिद्धान्त हो सकता है। अर्थात् १ महीने से लेके छः महीने तक सब बातों का निर्णय हो सकता है और दूर दूर रह कर पत्र द्वारा शास्त्रार्थ करने में ३६ वर्षों में भी पूरा होना कठिन है, परन्तु जिस पक्ष में वे प्रसन्न हों, उसी में मैं भी प्रसन्न हूँ। शास्त्रार्थ से पूर्व मैं और वे, जिसका पक्ष झूठा हो, उसके छोड़ने और जिसका सत्य हो, उसके स्वीकार करने के लिये प्रतिज्ञा का एक पक्के कागज़ पर लेख होकर, रजिस्टरी कराकर एक दूसरे को अपने अपने पत्र को देने से सम्भव है कि आप अपना अपना हठ छोड़ देवें।"

"(शेष रहा यह प्रश्न कि जब मैं काशी में सब दिन निवास नहीं करता और स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा बालशास्त्री जी वहां बसते हैं, तो सन्मुख में शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है ? इसके उत्तर में) मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब वह सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार करेंगे और मैं उसको सत्य समझ लूंगा, तब (मैं) जहां हूँगा, वहां से चल के काशी में उचित समय पर पहुँचूँगा कि जिसमें उनको परदेश यात्रा का क्लेश और धन व्यय भी न करना पड़ेगा। पुनः वहां यथावत् शास्त्रार्थ होकर सत्यासत्य निर्णय के पश्चात् सब का उपकार भी सिद्ध होगा। क्या यह छोटा लाभ है ?"

(भ्रमोच्छेदन)

ऋषि दयानन्द का पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न और ग्रिफ़िथ आदि विद्वानों को खुला चैलेंज

ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य के सम्बन्ध में पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न जी आदि स्वदेशी और ग्रिफ़िथ आदि पश्चिमी विद्वानों ने कुछ आक्षेप किये थे. सो ऋषिवर उन्हें इस प्रकार से चैलेञ्ज करते हैं:—

"परन्तु मैं वह प्रसिद्ध विज्ञापन देता हूँ कि ग्रिफिथ साहेब आदि अंग्रेज, पं० गुरुप्रसाद और महेशचन्द्र न्यायरत्न जी, और मैं कभी सन्मुख बैठ कर वेद विषय में वार्तालाप करें तब सबको विदित हो जावे कि इन विरुद्धवादियों को वेद के एक मूल मन्त्र का भी अर्थ ठीक २ नहीं आता, यह बात सबको विदित हो जावे। मैं चाहता हूँ कि ये लोग मेरे पास आवें या मुझको अपने पास बुलावें, तो ठीक ठीक विद्या और अविद्या का निश्चय हो जावे कि कौन पुरुष वेदों को यथार्थ जानता है और कौन नहीं (जानता) "क्योंकि विद्या दम्भः क्षणस्थायी" सब का दम्भ कुछ दिन चलता जाता(है) परन्तु विद्या का दम्भ क्षणमात्र में छूट जाता है।"

"भ्रान्तिनिवारण"

अन्य मत वालों के सिद्धान्तों को ऋषिवर कैसे प्राप्त करते थे ?

"और जो अंग्रेजी में बाईबल की पूर्वापर विरुद्ध आयतें लिखी हैं, उसकी देव नागरी ठीक ठीक कराके शीघ्र योधपुर हमारे पास भेज देना।"

(ऋषि के पत्र, आषाढ़ वदी ११, शनि, संवत ११४०,
राज मारवाड़ जोधपुर से बाबू नन्दकिशोरसिंह जी के
नाम से उद्धृत)

२ बाबू नन्दकिशोरजी ने उपर्युक्त पत्र के उत्तर में श्री स्वामी जी महाराज का लिखा कि:—

"बाईबल का पूर्वा पर विरुद्ध तर्जुमा जो आपने मंगाया था, उसके विषय में प्रार्थना यह है कि कुछ हो तो गया है और कुछ अवशेष है·········शीघ्र (बाकी) तर्जुमा करके आपकी सेवामें समर्पण करूंगा।"

(पत्र, ति० २४ जुलाई, ८३, जयपुर से उद्धृत)

(३) इसका (अर्थात् ईसाईयों का) जो विषय यहाँ लिखा है, सो केवल बाईबिल में से कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं······इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत से हुए हैं, जो इनके मत में बड़े २ पादरी हैं, उन्हीं ने किये हैं। उनमें से देव नागरी वा संस्कृत भाषान्तर देख कर मुझको बाईबल में बहुत सी शंका हुई है।"

(सत्यार्थ प्रकाश, स० १३ अनुभूमिका, ३)

(४) "जो कुरान अर्बी भाषा में है, उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है, उस अर्थ को देख, नागरी और अक्षर और आर्य्य भाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े २ विद्वानों से शुद्ध करवाके लिखा गया है।"

(सत्यार्थ प्रकाश, अनुभूमिका, ४, स० १४)

आर्य समाज से महर्षि की आशाएं

परन्तु "स्वदेशादि" सब मनुष्यों का निर्विघ्न हित आर्य समाज से यथार्थ होगा।"

(महर्षि के पत्र, संवत् १९३२, मिति चैत्र वदी ९, शनिवार,
श्रीयुत गोपाल राव देशमुख के नाम से उद्धृत)

"इस लिये जो उन्नति करना चाहो, तो आर्य्य-समाज के साथ मिल कर उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा·········

जैसा आर्य्य समाज आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।"

(स० स० ११)

समाज के साप्ताहिक अधिवेशन का कार्यक्रम

"प्रति सप्ताह में एक दिन प्रधान, मन्त्री और सब सभासद समाज स्थान में एकत्रित हों और सब कामों से इस काम को मुख्य जानें।"

"एकत्र होकर सर्वथा स्थिर चित्त हों, परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़ कर करें। फिर सामवेद का गान, परमेश्वर, सत्य धर्म, सत्य-नीति, सत्य उपदेश के विषय में ही बाजे आदि के साथ गान हो और इन्हीं विषयों पर मन्त्रों का अर्थ और व्याख्यान हो, फिर गान, फिर मन्त्रों का अर्थ, फिर व्याख्यान, फिर गान आदि।"

(मुम्बई नियम १०, ११)

प्रत्येक गृहस्थ सभासद् समाजोन्नति में तत्पर रहे

"प्रत्येक गृहस्थ सभासद को उचित है कि वह अपने गृह कृत्य से अवकाश पाकर जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है, उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिये करे और विरक्त हो नित्य ही समाजोन्नति में तत्पर रहे।"

(मुम्बई में निर्धारित नियमों में ६ नियम)

"इसलिये जो उन्नति करना चाहो, तो "आर्यसमाज" के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा······इसलिये जैसा "आर्यसमाज" आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है, एक का नहीं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

समाज के सभासद् परस्पर कैसे बर्ताव करें ?

"इस समाज में प्रधान आदि सब सभासदों को परस्पर प्रीति-पूर्वक, अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सब के साथ वर्त्तना होगा।"

(मुम्बई नियम, २२)

क्या स्त्रियां भी समाज की सभासद हो सकती हैं ?

"प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री, ये सब सभासद् होंगे।"

(मुम्बई नियम ६)

क्या किसी सभासद् को समाज से निकाला भी जा सकता है ?

"जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सदाचारी हो, उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, इसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना, परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना, किन्तु ये दोनों बातें श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही की जावें, अन्यथा नहीं।"

(मुम्बई नियम २४)

आर्य्यसमाजियों को आर्य्यसमाजी ही नौकर रखने चाहियें

"उन नियमों में दो नियम बढ़े हैं। सो एक विवाहादि उत्सव किंवा मृत्यु, अथवा प्रसन्नता समय जो कुछ दान पुण्य करना, उसमें से श्रद्धानुकूल आर्य्यसमाज के लिये अवश्य देना चाहिये। और दूसरा नियम यह है (कि) जबतक नौकरी करने वाला तथा नौकर रखने वाला आर्यसमाजस्थ मिले, तबतक अन्य को न रखना और न रखाना। और यथायोग्य व्यवहार दोनों रक्खें। प्रीतिपूर्वक काम करें और करावें।"

(ऋषि दयानन्द के पत्र तिथि संवत् १९३१ मिति चैत्र सुदि ६, रविवार से उद्धृत, जो उन्होंने श्री गोपालराव हरिदेशमुख को बम्बई से लिखा)

नोट—महर्षि के पत्रव्यवहार से विदित होता है कि वह यथा सम्भव आर्यसमाजस्थ को ही नौकर रखने और रखाने के पक्ष में थे और यह बात सबों को विदित थी। उदाहरणार्थ एक बार श्री स्वामी जी ने लाहौर आर्यसमाज के मन्त्री स० जवाहरसिंह को एक सब ओवरसियर के लिये लिखा, जिसके उत्तर में मन्त्रीजी ने श्री स्वामी जी को लिखा कि—"मेरठ वाले जिस "ब्रह्मस्वरूप" को सबओवरसियर के वास्ते यहां भेजते हैं, वह 'आर्य' नहीं, किन्तु आर्य का भाई है, उसको हम स्वीकार करें वा नहीं।" इससे ज्ञात होता है कि उस समय आर्यों को यह मालूम था कि ऋषिवर आर्यसमाजस्थ पुरुषों को ही नौकर रखने और रखाने के पक्ष में थे।"

(सम्पादक)

"जबतक नौकरी करने और कराने वाला आर्य समाजस्थ मिले, तबतक और की नौकरी न करे, और न किसी और को नौकर रक्खे, वे दोनों परस्पर स्वामी सेवक भाव से यथावत वर्तें।"

(मुम्बई नियम २६)

परमेश्वर के नाम

परमेश्वर के कितने नाम हैं ?

"परमेश्वर के असंख्य नाम हैं, क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म और स्वभाव का एक एक नाम है, इससे यह मेरे लिखे (सौ) नाम समुद्र के सामने विन्दुवत् हैं।"

(सत्यार्थ प्रकाश, स० १)

परमेश्वर का सर्वोत्तम, प्रधान और निज नाम

(१) "ओ३म्", यह ओंकार शब्द परमेश्वर का "सर्वोत्तम" नाम है।"

(२) "सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का "प्रधान" और "निज" नाम (ओ३म्) को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं।"

(सत्यार्थ प्रकाश, स० १)

(३) "ओ३म्", यह "मुख्य" परमेश्वर का नाम है, जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं।"

(संस्कार विधिः, वेदारम्भ संस्कार)

(४) परन्तु......"ओ३म्", यह तो "केवल" परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक है।"

(सत्यार्थ प्रकाश, स० १)

(५) "जो ईश्वर का "ओंकार" नाम है, सो पिता पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से "ओंकार" सब से "उत्तम" नाम है, इसलिये इसी नाम का जप, अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थविचार सदा करना चाहिये, कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो, जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम भक्ति सदा बढ़ती जाय।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

"श्रीगणेशाय नमः" आदि प्रचलित नामों का विधान तो ठीक है ?

"जो आधुनिक ग्रन्थों में "श्री गणेशायनमः","सीता रामाभ्यां नमः", "राधा-कृष्णाभ्यां नमः", "श्री गुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः", "हनुमते नमः", दुर्गायैनमः" "वटुकाय नमः", "भैरवाय नमः", "शिवाय नमः", "सरस्वत्यै नमः", "नारायण-नमः", इत्यादि लेख देखने में आते हैं, इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से

विरुद्ध होन से मिथ्या ही समझते हैं, क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता और आर्ष ग्रन्थों में "ओ३म्" तथा "अथ" शब्द तो देखने में आते हैं।"

(सत्यार्थ प्रकाश, स० १)

"हरि ओ३म्" नाम तो ठीक है ?

"जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में "हरिः ओ३म्" लिखते और पढ़ते हैं, यह पौराणिक और तांत्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं। वेदादि शास्त्रों में "हरि" शब्द, आदि में कहीं नहीं, इसलिये "ओ३म्" वा "अथ" शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिये।"

(सत्यार्थ प्रकाश, स० १)

उसी सच्चिदानन्द को अपना इष्ट देव मानो

"जो सब जगत् का कर्त्ता, सर्वशक्तिमान, सब का इष्ट, सब के उपासना के योग्य, सब का धारण करने वाला, सब में व्यापक, और सब का कारण है, जिसका आदि अन्त नहीं, और जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, जिसका जन्म कभी नहीं होता और जो कभी अन्याय नहीं करता, इत्यादि विशेषणों से वेदादि शास्त्रों में जिसका प्रतिपादन किया है, उसो को इष्ट देव मानना चाहिये और जो कोई इससे भिन्न को इष्ट देव मानता है, उसको अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी कहना चाहिये।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद विषय विचार)

चार सौ वर्ष तक सुख-पूर्वक जियो

"मनुष्य ब्रह्मचर्य्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण, चतुर्गुण आयु कर सकता है अर्थात् (४००) चार सौ वर्ष तक भी सुख-पूर्वक जी सकता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद विषय विचार)

'आचार्य और माता पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुण ग्रहण के लिये तपस्वी कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण, अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें, वैसे तुम भी बढ़ाओ।"

(स० प्र० स० ३)

नोटः—उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त का होता है।

(सम्पादक)

पुरुषार्थ

पहिले पुरुषार्थ करो और पुनः ईश्वर से सहायता माँगो !

(१) "परन्तु मनुष्य को यह करना उचित है कि ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रखा है, उतना पुरुषार्थ अवश्य करें। उसके उपरान्त ईश्वर के सहाय की इच्छा करनी चाहिये। क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का ईश्वर का यही प्रयोजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिये। जैसे कोई मनुष्य आँख वाले पुरुष को ही किसी चीज़ को दिखला सकता है, अन्धे को नहीं, इसी रीति से जो मनुष्य सत्यभाव, पुरुषार्थ से धर्म को किया चाहता है उस पर ईश्वर भी कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि ईश्वर ने धर्म करने के लिये बुद्धि आदि बढ़ने के साधन जीव के साथ रखे हैं। जब जीव उनसे पूर्ण पुरुषार्थ करता है, तब परमेश्वर भी अपने सब सामर्थ्य से उस पर कृपा करता है, अन्य पर नहीं।"

(२) "जब तक तुम लोग जीते रहो, तब तक सदा सत्य कर्म में ही पुरुषार्थ करते रहो, किन्तु इसमें आलस्य कभी मत करो, ईश्वर का यह उपदेश सब मनुष्यों के लिये है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद विषय विचार)

पुरुषार्थ बड़ा या प्रारब्ध ?

(३) "पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिये है कि जिससे सञ्चित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते, और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा "पुरुषार्थ" बड़ा है।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

पुरुषार्थ कितने प्रकार का होता है ?

"सब मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त धर्म से अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा से सदा पुरुषार्थ करना, प्राप्त पदार्थों की रक्षा यथावत् करनी चाहिये, रक्षा किये पदार्थों की सदा बढ़ती करना और सत्यविद्या के प्रचार आदि कामों में बढ़े हुए धन आदि पदार्थों का खर्च यथावत् करना चाहिये। इस चार प्रकार के पुरुषार्थ से धनधान्यादि को बढ़ा के सुख को सदा बढ़ाते जाओ"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म विषय)

"पुरुषार्थ के भेद—जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी, प्राप्त का अच्छे प्रकार रक्षण करना, रक्षित को बढ़ाना और बढ़े हुए पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में

तथा सबके हित करने में खर्च करना है इन चार प्रकार के कर्मों को "पुरुषार्थ" कहते हैं"।

(आर्य्योद्देश्य रत्नमाला)

पर-स्त्री गमन से बचो

"अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझें। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को पर-स्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के सङ्ग में खोते हैं वे महा मूर्ख होते हैं, क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिका के बिना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जो कि साधारण बीज और मूर्ख का ऐसा वर्त्तमान है, तो जो सर्वोत्तम मनुष्य शरीर-रूप वृक्ष को कुक्षेत्र में खोता है वह महा मूर्ख कहाता है, क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता"।

"जिस (वीर्य) से ऐसे २ महात्मा और महाशयों के शरीर उत्पन्न होते हैं उसको वेश्यादि दुष्ट क्षेत्र में बोना वा दुष्ट बीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना महा पाप का काम है"।

(स० प्र० स० ४)

धर्म कभी मत छोड़ो

"मनुष्यों को योग्य है कि काम से, अर्थात् झूठ से कामना सिद्ध होने के कारण से वा निन्दा स्तुति आदि के भय से भी धर्म का त्याग कभी न करें और न लोभ से, चाहे झूठ (और) अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता हो, तथापि धर्म को छोड़कर चक्रवर्ती राज्य को भी ग्रहण न करे। चाहे भोजन-छादन, जलपान आदि की जीविका भी अधर्म से हो सके वा प्राण जाते हों, परन्तु जीविका के लिये भी धर्म को कभी न छोड़े, क्योंकि जीव और धर्म नित्य हैं तथा सुख दुःख दोनों अनित्य हैं। अनित्य के लिये नित्य को छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म है। इस धर्म का हेतु कि जिस शरीर आदि से धर्म होता है वह भी अनित्य है। धन्य वे मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख दुःखादि के व्यवहार में वर्त्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी नहीं करते"।

(संस्कार विधि गृहस्थ)

"सब जगत् की प्रतिष्ठा धर्म ही है। धर्मात्मा का ही लोक में विश्वास होता है, धर्म से ही मनुष्य लोग पापों को छुड़ा देते हैं, जितने उत्तम काम हैं वे सब धर्म में ही लिये जाते हैं। इसलिये सबसे उत्तम धर्म को ही जानना चाहिये"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म विषय)

झूठ कभी मत बोलो

"जिस वाणी से सब व्यवहार, निश्चित वाणी ही जिनका मूल (है) और जिस वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं, जो मनुष्य उस वाणी को चोरता अर्थात् मिथ्या भाषण करता है वह जानो सब चोरी आदि पाप ही को करता है, इसलिये मिथ्या भाषण को छोड़ के सदा सत्य भाषण ही किया करे"।

(संस्कार विधि गृहस्थ)

आयु को बढ़ाओ

"आयु, वीर्यादि धातुओं की शुद्धि और रक्षा करना तथा युक्ति-पूर्वक ही भोजन और वस्त्र आदि का जो धारण करना है, इन अच्छे नियमों से उमर को सदा बढ़ाओ"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म)

अपने रूप को बढ़ाओ

"अत्यन्त विषय सेवा से पृथक् रह के और शुद्ध वस्त्रादि धारण से शरीर का स्वरूप सदा उत्तम रखना"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म)

अपना नाम पैदा करो

"उत्तम कर्मों के आचरण से नाम की प्रसिद्धि करनी चाहिये जिससे अन्य मनुष्यों का भी श्रेष्ठ कर्मों में उत्साह हो"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म)

अपना यश बढ़ाओ

"श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण के लिये परमेश्वर के गुणों का श्रवण और उपदेश करते रहो जिससे तुम्हारा भी यश बढ़े"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेदोक्त धर्म)

गृहस्थ रहकर भी तुम ब्रह्मचारी कहला सकते हो

"(हां) जो (गृहस्थ) अपनी ही स्त्री से प्रसन्न, निषिद्ध रात्रियों में स्त्री से पृथक् रहता है और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी "ब्रह्मचारी" के सदृश है"।

(स० प्र० स० ४)

"जो पूर्व निन्दित ८ रात्रि कह आये हैं उनमें जो स्त्री का संग छोड़ देता है, वह गृहस्थाश्रम में बसता हुआ भी "ब्रह्मचारी" कहाता है"।

(संस्कार विधि गर्भाधान)

अधर्म से धन सञ्चय मत करो

गृहस्थ कभी किसी दुष्ट के प्रसङ्ग से द्रव्य सञ्चय न करे, न विरुद्ध कर्म से, न विद्यमान पदार्थ होते हुए उनको गुप्त रख के (न) दूसरे से छल करके और चाहे कितना ही दुःख (आ) पड़े, तथापि अधर्म से द्रव्य सञ्चय कभी न करे।"

(संस्कारविधि, गृहस्थ)

प्रतिज्ञा का पालन जरूर करो

"जैसी हानि प्रतिज्ञा को मिथ्या करने वाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं (होती)। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी, उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिये। अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि "मैं तुमको वा तुम मुझसे अमुक समय में मिलूंगा वा मिलना, अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूंगा" इसको वैसे ही पूरी करे, नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा, इसलिये सदा सत्य भाषण और सत्य प्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिये।"

(स० प्र० स० २)

नित्य कर्मों और स्वाध्याय में नागा मत करो

"वेद के पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पञ्च महायज्ञों के करने और होम मन्त्रों में अनध्याय-विषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं है, क्योंकि नित्य कर्मों में अनध्याय नहीं होता, जैसे श्वास प्रश्वास सदा लिये जाते हैं (और) बन्द नहीं किये जा सकते, वैसे नित्य कर्म प्रतिदिन करना चाहिये न किसी दिन छोड़ना।"

(स० प्र० स० ३)

दूसरे के दोषों को मुंह पर कहो

"सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना। परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना।"

"और दुष्टों की यही रीति है कि सन्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूट कर गुणी नहीं हो सकता।"

(स० प्र० स० ४)

यदि सभा में जाओ तो हमेशा सत्य बोलो।

"धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो, तो सत्य ही बोले। जो कोई सभामें अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे, अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले, वह महापापी होता है।

"जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य, सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है, उस सभा में सब मृतक के समान हैं, जानो उनमें कोई भी नहीं जीता।"

(स० प्र० स० ६)

शरीर और आत्मा का बल साथ २ बढ़ाओ

(१) "शरीर बल (के) बिना (केवल) बुद्धि बलका क्या लाभ ? इसलिये शरीर बल सम्पादन करने के लिये और उसकी रक्षा करने के लिये बहुत प्रयत्न करते रहना चाहिये।"

(पूना का व्याख्यान ३, धर्माधर्म विषय)

(२) "शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहे, क्योंकि जो केवल आत्मा का बल, अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाते जायं और शरीर का बल न बढ़ावें, तो एक ही बलवान् पुरुष ज्ञानी और सैंकड़ों विद्वानों को जीत सकता है, और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय, (और) आत्मा का नहीं, तो राज्य-पालन की उत्तम व्यवस्था बिना विद्या के कभी नहीं हो सकती········इसलिये सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये।"

(स० प्र० स० ६)

तुम बिना पढ़े भी धर्मात्मा हो सकते हो

"जो मनुष्य विद्या पढ़ने का सामर्थ्य तो नहीं रखे और वह धर्माचरण किया चाहे, तो विद्वानों के सङ्ग और अपने आत्मा की पवित्रता और अविरुद्धता से धर्मात्मा अवश्य हो सकता है, क्योंकि सब मनुष्यों का विद्वान् होना तो सम्भव ही नहीं, परन्तु धार्मिक होने का सम्भव सब के लिये है।"

(व्यवहार भानु)

"विद्वान् होने का तो सम्भव नहीं, परन्तु जो धर्मात्मा हुआ चाहें, तो सभी हो सकते हैं। अविद्वान् लोग दूसरों को धर्म में निश्चय नहीं करा सकते और विद्वान् लोग धार्मिक होकर अनेक मनुष्यों को भी धार्मिक कर सकते हैं और कोई धूर्त मनुष्य अविद्वान् को बहका के अधर्म में प्रवृत्त कर सकता है, परन्तु विद्वान् को अधर्म में कभी नहीं चला सकता।"

(व्यवहार भानु)

इन सम्प्रदायों को उखाड़ डालो

"सब सज्जनों को श्रम उठाकर इन सम्प्रदायों को जड़-मूल से उखाड़ डालना

चाहिये। जो कभी उखाड़ डालने में न आवे, तो अपने देश का कल्याण कभी होने का ही नहीं।"

(शिक्षापत्री, ध्वान्त निवारणम्)

ईसाई मुसलमान आदिकों को अपने यहाँ मिलाओ

"देखो ! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं। ईसाई मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुम से अपने घर की रक्षा, और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब, जब तुम करना चाहो। जबलों (तुम) वर्त्तमान और भविष्यत् में उन्नति-शील नहीं होते, तबलों आर्य्यावर्त्त और अन्य देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती, चेत रखो।"

(स० प्र० स० ११)

बच्चों के साथ बहुत लाड़ प्यार मत करो

"उन्हीं के सन्तान विद्वान् सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं......... जो माता पिता और आचार्य्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं, वे जानों अपनी सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं, और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिलाके नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोष-युक्त, तथा ताड़ना से गुण-युक्त होते हैं, और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़न से प्रसन्न और लाड़नसे अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या (और) द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रक्खें।

(स० प्र० स० २)

"सन्तान और विद्यार्थियों का जितना लाड़न करना है, उतना ही उनके लिये बिगाड़, और जितनी ताड़ना करनी है, उतना ही उनके लिये सुधार है। परन्तु ऐसी ताड़ना न करे कि जिससे अंग भङ्ग वा मर्म में लगने से विद्यार्थी वा लड़के-लड़की लोग व्यथा को प्राप्त हो जायें।"

(व्यवहार भानुः)

परमात्मा कब प्रत्यक्ष होते हैं ?

(१) "जैसे कानसे रूप और चक्षु से शब्द ग्रहण नहीं हो सकता, वैसे अनादि परमात्मा को देखने का साधन शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्यास से पवित्रात्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे बिना पढ़े विद्या के प्रयोजनों की प्राप्ति नहीं

होती, वैसे ही योगाभ्यास और विज्ञान के बिना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता। जैसे भूमि के रूपादि गुण ही को देख जान के गुणों से अव्यवहृत सम्बन्ध से पृथिवी प्रत्यक्ष होती है, वैसे इस सृष्टि में परमात्मा की रचना विशेष लिङ्ग देख के परमात्मा प्रत्यक्ष होता है और जो पापाचरणेच्छा समय में भय, शङ्का (और) लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की ओर से है, इससे भी परमात्मा प्रत्यक्ष होता है।"

(स० प्र० स० १२)

(२) "इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है और जब आत्मा, मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकारादि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शङ्का, और लज्जा, तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है, वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है, और जब जीवात्मा शुद्ध होके, परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है, उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं।"

(स० प्र० स० ७)

धर्म और अधर्म किसे कहते हैं ?

"जो पक्षपात-रहित न्यायाचरण, सत्य-भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध हैं उसको "धर्म", और जो पक्षपात-सहित अन्यायाचरण, मिथ्या-भाषणादि, ईश्वराज्ञा भंग, वेद विरुद्ध हैं उसको "अधर्म" कहते हैं"।

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

"वेद, स्मृति वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात वेद द्वारा परमेश्वर प्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है, जैसा कि सत्य-भाषण, यह चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से 'धर्माधर्म' का निश्चय होता है"।

(स० प्र० स० ३)

अहिंसा धर्म पर चलकर मनुष्य की क्या अवस्था होजाती है ?

"जब अहिंसा धर्म निश्चय हो जाता है तब (न केवल) उस पुरुष के मन से वैर भाव छूट जाता है, किन्तु उसके सामने वा उसके सङ्ग से अन्य पुरुष का भी वैर भाव छूट जाता है"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

परमेश्वर का नाम स्मरण कैसे किया जाये ?

"परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभावको करते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है"।

(स० प्र० स० ११)

परमेश्वर का कृपा-पात्र कौन बन सकता है ?

परमेश्वर उपदेश करता है कि:—

"(हे मनुष्य लोगों !) जो मनुष्य सब का उपकार करने और सुख देने वाले हैं, मैं उन्हीं पर सदा कृपा करता हूँ, अर्थात् उनके लिये आशीर्वाद देता हूँ" ।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेदोक्त धर्म)

ईश्वर की व्यवस्था में अधिक सुख किसे मिलता है ?

"जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद विषय विचार)

कितनी उमर तक के बालकों के लिये नित्य-कर्म का विधान नहीं है ?

"बालक, मूर्ख और छोटे होने के कारण माता-पिता के आधीन रहता है और आठ वर्ष की अवस्था तक उसमें धर्म-सम्बन्धी काम करने की योग्यता नहीं होती, इसलिये हमारे धर्म शास्त्रों ने व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होने से पहिले बालकों के लिये नित्यकर्म का विधान नहीं किया है।"

(पूना का व्या० १४, नित्यकर्म और मुक्ति विषय)

रात्रि को भोजन करना कैसा है ?

जैनियों के विषय में महर्षि कहते हैं:—

"रात्रि को भोजन न करना, ये..........बातें अच्छी हैं।"

(स० प्र० स० १२)

दूध किसका सर्वोत्तम है ?

"गाय के दूध, घी से जितने बुद्धि-वृद्धि से लाभ होते हैं, उतने भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

"यद्यपि भेड़ी का दूध बकरी के दूध से कुछ कम होता है, तथापि बकरी के दूध से उसके दूध में बल और घृत अधिक होता है।"

(गो करु० नि०)

"यद्यपि गाय के दूध से भैंस का दूध कुछ अधिक (होता है), तथापि जितना गाय के दूध..............से मनुष्यों को सुखों का लाभ होता है उतना भैंसियों के दूध से नहीं (होता), क्योंकि जितने आरोग्यकारक और बुद्धि-वर्द्धक आदि गुण गाय के दूध...........में होते हैं, उतने भैंस के दूध...........में नहीं हो सकते। इसलिये आर्य्यों ने गाय का दूध सर्वोत्तम माना है।"

(गो करु० नि०)

क्या बलवान निर्बलों को खा जायें ?

(१) जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते, और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं, तो वे मनुष्य-स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत हैं। और जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहाता है, और जो स्वार्थवश होकर परहानि-मात्र करता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।"

(सत्यार्थप्रकाश भूमिका)

(२) "जितने मनुष्य से भिन्न-जातिस्थ प्राणी हैं, उनमें दो प्रकार का स्वभाव है, (अर्थात्) बलवान् से डरना, निर्बलों को डराना, और पीड़ा कर अर्थात् दूसरे का प्राण तक निकाल के अपना मतलब साध लेना, देखने में आता है। जो मनुष्य (होकर भी) ऐसा ही स्वभाव रखता है, उसको भी इन्हीं जातियों में गिनना उचित है। परन्तु जो निर्बलों पर दया, उनका उपकार और निर्बलों को पीड़ा देने वाले अधर्मी बलवानों से किञ्चिन्मात्र भी भय, शङ्का न करके इनको पर पीड़ा से हटाके निर्बलों की रक्षा तन, मन और धन से सदा करना है, वही मनुष्य जाति का निज गुण है।"

(व्यवहारभानुः)

क्या संसार दुःख रूप है ?

"सब संसार में दुःखरूप, दुःख का घर, दुःख का साधन रूप भावना करके संसार से छूटना चारवाकों में अधिक मुक्ति (मानी जाती है).........(परन्तु) जो सब संसार दुःख रूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिये। संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है, इसलिये सब संसार दुःख रूप नहीं हो सकता, किन्तु इसमें सुख दुःख दोनों हैं और जो बौद्ध लोग ऐसा ही सिद्धान्त मानते हैं, तो खान-पानादिकरना और पथ्य तथा औषध्यादि सेवन करके शरीर-रक्षण करने में प्रवृत्त होकर सुख क्यों मानते हैं ? जो कहो कि हम प्रवृत्त तो होते हैं, परन्तु इसको दुःख ही मानते हैं, तो यह कथन ही सम्भव नहीं, क्योंकि जीव सुख जानकर प्रवृत्त

और दुःख जानके निवृत्त होता है । संसार में धर्म क्रिया, विद्या, सत्सङ्गादि श्रेष्ठ व्यवहार सब सुखकारक हैं, इनको कोई भी विद्वान् दुःखका लिङ्ग नहीं मान सकता।"

(स० प्र० स० १२)

"जो सृष्टि के सुख दुःख की तुलना की जाय, तो सुख कई गुणा अधिक होता है और बहुतसे पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होतेहैं ।"

(स० प्र० स० ८)

स्व-सन्तान का गुरु कौन हो ?

"अपने पुत्रों के प्रति गुरु होने का मुख्य अधिकार पिता को है......इससे मुख्य कर पिता ही गुरु हो सकता है।"

(वेद विरुद्ध मत खण्डन)

"जो वीर्यदान से लेके भोजनादि कराके पालन करता है, इससे पिता को गुरु कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय का अज्ञान रूपी अन्धकार मिटा देवे, उसको भी गुरु अर्थात् आचार्य कहते हैं ।"

(आर्योद्देश्य रत्नमाला)

अधर्मी गुरु के साथ कैसे व्यवहार करे ?

(वल्लभादि मतस्थ लोगों के गुरुपन का खण्डन करते हुए)

"ऐसे पाप कर्म कर्त्ता अधर्मी गुरु के त्यागने और मार डालने से पुण्य ही होता है, पाप नहीं । इस विषय में धर्मशास्त्र का प्रमाण है: —

"गुरु, बालक, वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण, (यदि) यह सब आततायी, धर्म-नाशक, अधर्म के प्रवर्त्तक हों तो राजा बिना विचारे (उन्हें) मार डाले, क्योंकि आततायी के मारने में मारने वाले को दोष नहीं लगता, चाहे प्रसिद्ध में मारे वा अप्रसिद्ध में । सर्वथा क्रोध को क्रोध मारता है, किन्तु हिंसा नहीं कहाती । धर्म को छोड़ के सर्वथा जो अधर्म में प्रवृत्त हो, वह आततायी कहाता है ।

(वेद विरुद्ध मत खण्डन)

मनुष्य रूप में गधा कौन है ?

"जो अन्य देव, अर्थात् ईश्वर से भिन्न श्रोत्रादि इन्द्रिय अथवा कोई देहधारी विद्वान् देव को ब्रह्म जाने, अथवा उपासना करे, वा ऐसा अभिमान करे कि मैं तो ईश्वर का उपासक नहीं......उससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं, किंवा ईश्वर नहीं है, अथवा ऐसा कहता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ, सो इन्द्रियों वा देहधारी विद्वानों का पशु है,

जैसा कि बैल वा गर्दभ, वैसा वह मनुष्य है जो परमेश्वर की उपासना नहीं करता।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम्)

यदि कोई धनवान् निर्धन हो जाय तो कैसे रहे ?

"गृहस्थ लोग कभी प्रथम पुष्कल धनी होके पश्चात् दरिद्र हो जाय उससे (वे) अपने आत्मा का अपमान न करें कि "हाय हम (तो) निर्धनी हो गये" इत्यादि विलाप भी न करें, किन्तु मृत्यु पर्यन्त लक्ष्मी की उन्नति में पुरुषार्थ किया करें और लक्ष्मी को दुर्लभ न समझें।"

(संस्कार विधि गृहस्थ)

अधर्मी का नाश एक दिन अवश्य होता है

"मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता, वैसे ही किये हुए अधर्म का फल भी शीघ्र नहीं होता। किन्तु धीरे धीरे अधर्म कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है, पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है।"

(संस्कार विधि गृहस्थ)

यदि किसी सभा में मतभेद हो जाय तो कैसे निर्णय हो ?

"यदि सभा में मतभेद हो, तो बहुपक्षानुसार मानना और समपक्ष में उत्तमों की बात स्वीकार करनी और (यदि) दोनों पक्ष वाले बराबर उत्तम हों तो संन्यासियों की सम्मति लेनी, जिधर पक्षपात-रहित, सर्वहितैषी सन्यासियों की सम्मति होवे, वही उत्तम समझनी चाहिये।"

(संस्कार विधि गृहस्थ)

ब्याज अधिक से अधिक कितनी लेनी और देनी चाहिये ?

"सवा रुपये सैकड़े से अधिक, चार आने से न्यून ब्याज न लेवे (और) न देवे। जब दूना धन आजाय (तो) उससे आगे कौड़ी न लेवे, न देवे। जितना (कोई) न्यून ब्याज लेवेगा, उतना ही उसका धन बढ़ेगा और कभी धन का नाश और कुसन्तान उसके कुल में न होंगे।"

(संस्कार विधि गृहस्थ)

गृहस्थी को स्वयं कब भोजन करना चाहिये ?

"माता, पिता, आचार्य, अतिथि, पुत्र, भृत्यादिकों को भोजन कराके पश्चात् गृहस्थ को भोजनादि करना चाहिये।"

(पञ्च महायज्ञ विधि, बलि वैश्वदेव)

उपवास किन्हे नहीं करना चाहिये ?

"गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न करना चाहिये, परन्तु यदि किसी को करना भी हो, तो जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधा न लगे, उस दिन शर्करावत् (शर्बत) वा दूध पीकर रहना चाहिये। जो लोग) भूख में नहीं खाते और बिना भूख के भोजन करते हैं, (वे) दोनों रोग सागर में गोते खा दुःख पाते हैं।"

(स० प्र० स० ११)

व्यभिचार-त्याग किसे कहते हैं ?

"जो अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल के बिना वीर्य दान देना, तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य का अत्यन्त नाश करना और युवावस्था के बिना विवाह करना है यह "व्यभिचार" कहाता है। उसको छोड़ देने का नाम "व्यभिचार-त्याग" है।"

(आर्योद्देश्यरत्नमाला)

राजा प्रजा को कैसे वर्त्तना चाहिये ?

"राजपुरुष प्रजा के लिये, सुमाता, सुपिता के समान और प्रजा पुरुष राज-सम्बन्ध में सुसन्तान के सदृश वर्त्तकर परस्पर आनन्द बढ़ावें।"

(व्यवहार भानुः)

मित्र, मित्र के साथ कैसा वर्ताव करे ?

"मित्र मित्र के साथ सत्य व्यवहारों के लिये आत्मा के समान प्रीति से वर्तें, परन्तु अधर्म के लिये नहीं।"

(व्यवहारभानुः)

पड़ोसी-पड़ोसी को परस्पर कैसे रहना चाहिये ?

"पड़ोसी के साथ ऐसा वर्त्ताव करें कि जैसा अपने शरीर के लिये करते हैं, वैसे ही मित्रादि के लिये भी कर्म किया करें।"

(व्यवहार भानुः)

स्वामी-सेवक कैसे वर्त्तें ?

"स्वामी सेवक के साथ ऐसा वर्त्तें कि जैसा अपने हस्तपादादि अङ्गों की रक्षा के लिये वर्त्तते हैं। सेवक स्वामियों के लिये ऐसे वर्त्तें कि जैसे अन्न, जल, वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिये होते हैं।"

(व्यवहार भानुः)

स्त्री पुरुष का वियोग न होना चाहिये

"स्त्री वा पुरुष का वियोग कभी न होना चाहिये·········पति और स्त्री का वियोग दो प्रकार का होता है, कहीं कार्यार्थ देशान्तर में जाना और दूसरा मृत्यु से वियोग होना। इनमें से प्रथम (वियोग) का उपाय यही है कि (यदि) दूर देश में यात्रार्थ जावे, तो स्त्री को भी साथ रखे। इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये।"

(स० प्र० स० ४)

मधुपर्क किसे कहते हैं ?

"मधुपर्क उसको कहते हैं, जो दही में घी वा सहत मिलाया जाता है, उसका परिमाण १२ (बारह) तोले दही में (४) चार तोले सहत, अथवा ४ (चार) तोले घी मिलाना चाहिये और यह मधुपर्क काँसे के पात्र में होना उचित है।"

(संस्कार विधि, विवाह संस्कार)

मधुपर्क किन्हें देना चाहिये ?

"राजा, आचार्य, श्वशुर, चाचा, और मामा आदि का अपूर्वागमन जब हो, और स्नातक (अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूर्ण करके ब्रह्मचारी घर को आवे। ··· ··· ··· इनको मधुपर्क देना होता है।"

(संस्कार विधि, समावर्त्तन संस्कार)

क्या योनियां चौरासी लाख हैं ?

"चौरासी लाख योनियां हैं, अथवा न्यूनाधिक हैं, तो इन गपोड़ कथाओं के वर्णन करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जगत् में जितनी योनियाँ हैं, इसका शोध लगा, गिन कर, हमारे शास्त्री लोग बतावें।"

(पूना का व्या० ६, पुनर्जन्म विषय)

सच्चे तीर्थ कौन से हैं ?

"वेदादि सत्य-शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य-भाषण, माता-पिताकी सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्म-युक्त पुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म, (यह सब) दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं।"

(स० प्र० स० ११)

"जिससे दुःख सागर से पार उतरें, कि जो सत्य भाषण, विद्या, सत्संग,

यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्या दानादि, शुभ कर्म हैं, उन्हीं को तीर्थ समझता हूँ, इतर जल स्थलादि को नहीं।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

"वेदादि सत्य शास्त्रों का नाम तीर्थ है कि जिनके पढ़ने, पढ़ाने और उनमें कहे हुए मार्गों में चलने से मनुष्य लोग दुःख सागर को तरके, सुखों को प्राप्त होते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, ग्रंथप्रामाण्या प्रामाण्य)

"जितने विद्याभास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का सङ्ग, ब्रह्मचर्य्य, जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं, वे सब तीर्थ कहाते हैं, क्योंकि इन करके जीव दुःख सागर से तरजा सकते हैं।"

(आर्य्योद्देश्य रत्नमाला)

प्राचीन काल में प्रजा के लोगों को कितनी स्वाधीनता प्राप्त थी ?

अपने पूना के इतिहास विषयक, दशम व्याख्यान में ऋषि दयानन्द ने कथन किया है कि राजा शान्तनु के राज्यकाल में धन दौलत बढ़ जाने के कारण आर्यावर्त्त की दशा बिगड़नी आरम्भ हो गई थी, तमाम सामाजिक नियमों का भङ्ग होने लगा। राजा शान्तनु, निष्कण्टक राज्य होने के कारण धन के मद में मस्त होकर अपने कर्तव्य कर्मों में प्रमाद करने लगा। देश में व्यभिचार बढ़ चला और स्वयं शान्तनु विषय वासना में फंस गया। ऐसे गिरे हुए समय में भी प्रजा के लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी और राजा को साहस न हो सकता था कि वह प्रजा जनों पर किसी प्रकार का अत्याचार कर सके। इसका उदाहरण ऋषिवर यों देते हैं:—

"(यद्यपि राजा शान्तनु सत्यवती पर मोहित था), परन्तु शान्तनु राजा भी इस पर बल न कर सका। सत्यवती के पिता ने उसको डाँटा था, जब तक भीष्म ने अपना कुल हक़ सत्यवती के पुत्रों को देने का निश्चय नहीं किया, तब तक सत्यवती के दरिद्री पिता ने राजा की आज्ञा स्वीकार नहीं की। भीष्म पितामह के इस निश्चय पर कि उसने अपना कुल हक सत्यवती के पुत्रों को दे दिया, सत्यवती के दरिद्री पिता ने राजा का कहना स्वीकार किया। इससे प्रकट हो सकता है कि प्राचीन आर्य मनुष्यों में कितनी स्वाधीनता (होती) थी।"

(पूना का व्या० १०, इतिहास विषय)

भारतवर्ष का पतन कब से आरम्भ हुआ ?

"इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे, क्योंकि उस समय में (यद्यपि) ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ २ आलस्य, प्रमाद,

ईर्ष्या, द्वेष के (जो) अङ्कुर उगे (हुए) थे, वे बढ़ते २ वृक्ष हो गये। जब सच्चा उपदेश न रहा, तब (आर्य्यावर्त्त में अविद्या फैल कर परस्पर में लड़ने बिगड़ने लगे।''

(स० प्र० स० ११)

देश में अन्धकार कब छा जाता है ?

"जब उत्तम २ उपदेशक होते हैं, तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते, तब अन्धपरम्परा चलती है। फिर जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं, तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।"

(स० प्र० स० ११)

ईश्वर ही सृष्टि कर्त्ता है

(१) "देखो ! शरीर में किस प्रकार की ज्ञान-पूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा, कला का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप मूलरचन, लोम नखादि का स्थापन, आँख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्त अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभाग करण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है ? इसके बिना नाना प्रकार के रत्न, धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार (के) वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र मध्यरूपों से युक्त पत्र, पुष्प फल, मूलनिर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस, सुगन्धादि-युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन, अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल, सूर्यचन्द्रादि लोक-निर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता।"

(स० प्र० स० ८)

(२) "बिना चेतन परमेश्वर के निर्माण किये जड़ पदार्थ स्वय आपस में स्वभाव से नियम पूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। जो स्वभाव से ही होते हों, तो द्वितीय सूर्य चन्द्र पृथिवी और नक्षत्रादि लोक आप से आप क्यों नहीं बन जाते ?"

(स० प्र० स० १२)

(३) "सब पदार्थों का कारण अनादि है, तो भी ईश्वरको मानना अवश्य है क्योंकि मट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाय। जो कारण

होता है, वह आप कार्य्य रूप नहीं बन सकता, क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता और कोई जीव भी उसको नहीं बना सकता। आज तक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जैसा कि यह मेरा रोम है। ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता और आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उनसे ऐसी वस्तु बना सके, कोई दो त्रिसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर को ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे।"

(४) "देखो ! एक आंख की रचना में ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है। आज तक बड़े २ वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं, तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है, कोई नहीं जानता कि किस किस प्रकार और क्या क्या गुण ईश्वर ने उसमें रखे हैं। इसलिये सूर्य चान्द आदि जगत् का रचना और धारण करना ईश्वर ही का काम है, तथा जीवों के कर्म्मों के फल का पहुँचाना यह भी परमात्मा ही का काम है, किसी दूसरे का नहीं। इससे ईश्वर को मानना अवश्य है।"

(सत्यधर्म विचार)

आस्तिक और नास्तिक संवाद

"(नास्तिक) ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होता। जो कुछ होता है वह कर्म से (ही होता है)।

(आस्तिक) यदि ईश्वर फल प्रदाता न हो, तो पाप के फल दुःख को जीव अपनी इच्छा से कभी नहीं भोगेगा। जैसे चोर आदि चोरी का फल दण्ड अपनी इच्छा से नहीं भोगते, किन्तु राज्य व्यवस्था से भोगते हैं। वैसे ही परमेश्वर के भुगाने से जीव पाप और पुण्य के फलों को भोगते हैं, अन्यथा कर्म संकर हो जायँगे और अन्य के कर्म अन्य को भोगने पड़ेंगे।"

"(नास्तिक) ईश्वर व्यापक नहीं है। जो व्यापक होता तो सब वस्तु चेतन क्यों नहीं होतीं ?·········क्योंकि सब में ईश्वर एक सा व्याप्त है तो छुटाई बड़ाई (भी) नहीं होनी चाहिये।

(आस्तिक) व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते, किन्तु व्याप्य एक देशी और व्यापक सर्व देशी होता है। जैसे आकाश सब में व्यापक होता है और भूगोल और घट पटादि सब व्याप्य एक देशी हैं। जैसे—पृथिवी आकाश नहीं हैं, वैसे ईश्वर और जगत् एक नहीं। जैसे सब घटपटादि में आकाश व्यापक है और

घटपटादि आकाश नहीं है, वैसे परमेश्वर चेतन सब में है और सब चेतन नहीं होता।"

"(नास्तिक) जो ईश्वर की रचना से सृष्टि होती (है), तो माता पितादि का क्या काम ?

(आस्तिक , ऐश्वरी सृष्टि का ईश्वर कर्ता है, जैवी सृष्टि का नहीं। जो जीवों के कर्तव्य कर्म हैं उनको ईश्वर नहीं करता, किन्तु जीव ही करता है। जैसे वृक्ष, फल, औषधि, अन्नादि ईश्वर ने उत्पन्न किया है, उसको लेकर मनुष्य न पीसें, न कूटें, न रोटी आदि पदार्थ बनावें और न खावें तो क्या ईश्वर उसके बदले (स्वय) इन कामों का कभी करेगा ? और जो न करें तो जीव का जीवन भी न हो सके। इसलिये आदि सृष्टि में जीव के शरीरों और सांचे को बनाना ईश्वराधीन (है), पश्चात् उन से पुत्रादि को उत्पत्ति करना जीव का कर्तव्य काम है।"

(स० प्र० स० १२)

क्या सांख्य शास्त्र के कर्त्ता नास्तिक थे ?

"जो कोई कपिलाचार्य्य को अनीश्वरवादी कहता है, जानो वही अनीश्वरवादी है कपिलाचार्य्य नहीं।"

(स० प्र० स० ७)

सन्ध्योपासन

सन्ध्योपासन कहां और कैसे करे ?

"सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्र चित्त से करे.........।"

"जङ्गल में अर्थात् एकान्त देश में जा (कर) सावधान होके, जल के समीप स्थित होके नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ-ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे। परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

सन्ध्या कै बार करे ?

"सन्ध्या और अग्निहोत्र साय प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात दिन की सन्धिवेला है, अन्य नहीं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

कितने समय तक ध्यान करे ?

"न्यून से न्यून एक घटा ध्यान अवश्य करे, जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

"आचमन" कैसे और क्यों करे ?

"आचमन उतने जल को हथेली में लेके उसके मूल और मध्य-देश में ओष्ठ लगाके करे कि वह जल कंठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न उससे अधिक (और) न न्यून। उससे कंठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

"मार्जन" कैसे और क्यों करे ?

"अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के, उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य (न हो) और जल प्राप्त न हो, तो न करे।"

(स० प्र० स० ३)

"अघमर्षण" मन्त्र का विचार

"तत्पश्चात् सृष्टिकर्त्ता परमात्मा और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखे मन्त्रों से (अर्थात अघमर्षण मन्त्रों से ऋतञ्च सत्यञ्च आदि—सम्पादक) करे और जगदीश्वर को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र, सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा के निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे, किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्तमान रक्खे।"

(संस्कार विधि, गृहस्थ)

"मनसा परिक्रमा" मन्त्रों का विचार

"इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर, भीतर, परमात्मा को पूर्ण जान कर, निर्भय, निश्शङ्क, उत्साही, आनन्दित (और) पुरुषार्थी रहना।"

(संस्कारविधि, गृहस्थ)

सन्ध्या न करने वाले के लिये दण्ड

"जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता, उसको शूद्र के समान समझ कर द्विज-कुल से अलग करके, शूद्र कुल में रख देना चाहिये। वह सेवा कर्म किया करे और उसके विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जान कर पूर्वोक्त दो समयों में (अर्थात् प्रातः सायं—सम्पादक) जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें।"

(पञ्च-महायज्ञ विधिः)

सन्ध्योपासन की विधिः

पाठक वृन्द !

हमने प्रायः यह देखा है कि भिन्न २ समाजों में भिन्न २ रीतियों पर सन्ध्या की जाती है, इसलिये हम ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के आधार पर, सन्ध्या की एक निश्चित पद्धित लिख देते हैं ताकि किसी प्रकार की भ्रान्ति न रहे। (सम्पादक)

दो घड़ी रात्रि से लेकर सूर्योदय पर्य्यन्त प्रातःकाल की सन्ध्या, और सूर्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्य्यन्त सायंकाल की सन्ध्या का समय है। पहले स्नानादि कर्म से शरीर की शुद्धि और राग-द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये। पुनः दक्षिण हाथ में थोड़ासा जल लेकर "ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" आदि तीन मन्त्रों से एक २ आचमन करना चाहिये। फिर दोनों हाथ धोकर, कान, आंख और नासिका आदि का जल से स्पर्श करके, शुद्ध-देश अर्थात् किसी साफ़ सुथरी जगह पर पवित्र आसन बिछाये, जिधर की ओर वायु हो, उधर को मुख करके आसन पर बैठ जाये और प्राणायाम करे। कम से कम तीन प्राणायाम अवश्य करे, नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल कर यथाशक्ति रोके, पश्चात् धीरे २ भीतर लेके भीतर थोड़ा-थोड़ासा रोके, यह एक प्राणायाम हुआ। यह याद रहे कि प्राणायाम करते समय नासिका को हाथ से न पकड़े। प्राणायाम से मन स्थिति सम्पादन होती है। प्राणायाम के पश्चात् हृदय में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करके "ओ३म् शन्नोदेवी" इस "आचमन" मन्त्र को एक बार पढ के तीन आचमन करे। आचमन से गले के कफ आदि की निवृत्ति होती है, परन्तु यदि जल न मिले, तो आचमन न करे। इसके पश्चात् "ओ३म् वाक् वाक्" आदि मन्त्रों से अङ्गों का स्पर्श करे। इसका अभिप्राय यह है कि सब इन्द्रियों में इच्छाशक्ति का प्रवेश होकर इन्द्रियां बलवान हों। फिर..."ओ३म् भूः पुनातु शिरसि" इत्यादि मन्त्रोंसे अङ्गों पर जल के छींटे देवे। पुनः पूर्वोक्त रीति से प्राणायाम की क्रिया करे और "ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः" इत्यादि मन्त्रों का जप भी करता जाये। इसी रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ (इक्कीस) प्राणायाम करे। फिर "ओ३म् ऋतञ्च" आदि "अघमर्षण" मन्त्रों से सृष्टिकर्त्ता परमात्मा और सृष्टिक्रम का विचार करके पापों से अपने मन और आत्मा को हटावे। अघमर्षण मन्त्रों के पश्चात् फिर आचमन मन्त्र "ओ३म् शन्नोदेवी०" से तीन आचमन करे। तत्पश्चात् "ओ३म् प्राचीदिक्" आदि "मनसापरिक्रमा" के मन्त्रों को पढते जाना और मन से चारों ओर, बाहर, भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निश्शङ्क, उत्साही और आनन्दित रहना। फिर "उपस्थान" के मन्त्रों (ओ३म् उद्वयं० से लेकर तच्चक्षुर्देवहितं० तक) से परमात्मा की निकटता पर

ध्यान करे। पुनः "शन्नोदेवी०" इस मन्त्र से तीन आचमन करके "ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुः" इस "गायत्री" मन्त्र के अर्थों का विचार करता जाये। इसके अनन्तर "ओ३म् नमः" इस "समर्पण" मन्त्र से परमात्मा को नमस्कार करे।"

(सम्पादक)

प्राणायाम

प्राणायाम किसे कहते हैं—

"प्राण अर्थात् श्वास, और आयाम अर्थात् लम्बाई—तात्पर्य, श्वास की लम्बाई को "प्राणायाम" कहते हैं।"

प्राणायाम की विधिः

(१) "जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे, जब बाहर निकालना चाहे, तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखे, तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे २ भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में "ओ३म्" इसका जप करता जाय, इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।"

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३)

(२) "एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना, दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय, उतना रोक के। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही बार जहां का तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे, तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे, तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें, तो दोनों की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं।"

(स० प्र० स० ३)

श्वास प्रश्वास को कैसे रोकें?

(१) "उन दोनों (श्वास, प्रश्वास, अर्थात् बाहर से भीतर और भीतर से बाहर आने जाने वाला वायु—सम्पादक) के जाने आने को विचार से रोके। नासिका को हाथ से

कभी न पकड़े, किन्तु ज्ञान से ही उसके रोकने को प्राणायाम कहते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

(२) "(अधिक विस्तार पूर्वक) आचमन कर, दोनों हाथ धो, कान आंख (और) नासिका आदि का शुद्ध जल से स्पर्श करके, शुद्ध देश, पवित्रासन पर, जिधर की ओर का वायु हो, उधर को मुख करके, नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके, हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के, यथा-शक्ति रोके। पश्चात् धीरे २ भीतर लेके भीतर थोड़ा सा रोके, यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करे। नासिका को हाथ से न पकड़े।"

"इस रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ (इक्कीस) प्राणायाम करे।"

(संस्कार विधिः, गृहस्थ)

प्राणायाम से लाभ

(१) जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, प्राणायाम से "आत्मा और मन को स्थिरता होती है।" प्राण वश में होने से मन और इन्द्रियें स्वाधीन हो जाती हैं। इसके आगे महर्षि प्राणायाम के लाभ इस प्रकार कथन करते हैं:—

"जब मनुष्य प्राणायाम करता है, तब प्रति क्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है।"

(२) "जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं, वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।"

(३) "बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म-रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म-विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा, स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।"

(स० प्र० स० ३)

नकली प्राणायाम से बचो

"स्थिर सुखमासनम्" यह आसन का लक्षण कहा है। आसन वही है जिसमें सुख से बैठ कर ईश्वर से योग हो सके। तो फिर नये लोगों का यह कहना कि "यह चौरासी आसनों वाला भानमती का तमाशा ठीक है" कैसे मान लिया जावे? इस तरह पर प्राणायाम के विषय में तमाशा बन रहा है·········(यदि) नासिका और मुख बाँध कर प्राणों की रुकावट करने से "कुम्भक" होता, तो जो लोग फाँसी पर

चढ़ते हैं, उन्हीं को "कुम्भक" का ठीक साधन समझना चाहिये। यथार्थ स्वरूप "कुम्भक" का यह है कि वायु को बाहर की बाहर रोक रखना। बाहर निकालने में विशेष उपाय करने से "रेचक" होता है। भीतर के भीतर प्राणों को रखने से "पूरक" होता है, यह प्राणायाम का विधान है।"

(उ० मं० पूना का व्या० ११ इतिहास)

होम, अर्थात् अग्नि होत्र

होम की सामग्री

"होम के द्रव्य चार प्रकार के (हैं):—

(प्रथम सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि

(द्वितीय-पुष्टि कारक) घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि

(तीसरे मिष्ट) शक्कर, शहद, छुवारे, दाख, आदि

(चौथे-रोग नाशक) सोमलता, अर्थात् गिलोय आदि औषधियाँ

(संस्कार विधिः, सामान्य प्रकरण)

होम की समिधा

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व, आदि की समिधा, वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें, परन्तु यह समिधा कीडी लगीं, मलिन देशोत्पन्न, और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों।"

(संस्कार विधिः, सामान्य प्रकरण)

अग्निहोत्र का समय

"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्नि-होत्र करने का समय है।"

(स० प्र० स० ३)

किन मन्त्रों से होम करें ?

"प्रातः और सायंकाल, सन्ध्योपासन के पीछे, इन पूर्वोक्त, (अर्थात् नित्य अग्नि-होत्र के) मन्त्रों से होम करे।"

(पञ्चमहायज्ञ विधिः)

यदि अधिक होम करना चाहें, तो फिर किन मन्त्रों से करें ?

"अधिक होम करने की जहाँ तक इच्छा हो, वहाँ तक "स्वाहा" अन्त में पढ़कर गायत्री मन्त्र से होम करें।"

(पञ्चमहायज्ञ विधिः)

"स्वाहा" शब्द का क्या अर्थ है ?

(१) "स्वाहा", शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो, वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं, वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये।"

(स० प्र० स० ३)

(२) "स्वाहा शब्द का यह भी अर्थ है कि सब दिन मिथ्यावाद को छोड़ के सत्य ही बोलना चाहिये।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना विषय)

अग्निहोत्र के साथ मन्त्रों के पढ़ने का क्या लाभ है ?

(१) "मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायँ।"

"और मन्त्रों का आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें।"

"वेद पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे।"

(स० प्र० स० ३)

(२) "उनके (अर्थात् मन्त्रों के) पढ़ने से वेदों की रक्षा, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, और उपासना, होती है·········और ईश्वर का होना भी विदित होता है, (ता) कि कोई नास्तिक न हो जाय, क्योंकि ईश्वर की प्रार्थना पूर्वक ही सब कर्मों का आरम्भ करना होता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदविषय, कर्मकाण्ड)

होम के लाभ

(१) "पूर्वोक्त सुगन्धादि युक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है। जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्ध द्रव्य और घी, इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपा के उनमें छौंक देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं, क्योंकि उस सुगन्ध द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दाल आदि पदार्थों का पुष्टि और रुचि बढ़ाने वाले कर देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भाफ उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, वेद विषय विचार, कर्मकाण्ड)

(२) "जो वायु सुगन्धादि द्रव्यके परमाणुओंसे युक्त होमद्वारा आकाशमें चढ़ के वृष्टि जल को शुद्ध कर देता (है) और उससे वृष्टि भी अधिक होती है, क्योंकि

होम करके नीचे गर्मी अधिक होने से जल भी ऊपर अधिक चढ़ता है। शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि ओषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती है। ऐसे प्रतिदिन सुगन्ध के अधिक होने से जगत् में नित्य प्रति अधिक २ सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने के बिना दूसरे प्रकार से होना असम्भव है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद विषय विचार कर्मकाण्ड)

क्या होम देवता लोगों के लिये नहीं होता ?

"योग्य रीति से, यथाविधि होम करना चाहिये। एकदम मनभर घी जला दिया वा चम्मच २ करके मन भर घृत को वर्ष भर जलाते रहें, तो भी होम नहीं होगा। फिर कोई कोई कहते हैं कि "होम अर्थात् देवतोद्देशक त्याग है। देवता लोग यजन देश में आकर सुगन्धि लेते हैं, इसलिये होम करना चाहिये" तो यह कहना अप्रशस्त है। क्या देवलोक में कुछ सुगन्धि की न्यूनता है, जो वे हमारे क्षुद्र हवि-र्द्रव्य की अपेक्षा करते हैं ? इस तरह कोई कोई कहते हैं कि "श्राद्धादिकों में पितृ-लोग आते हैं और यदि इन्हें श्रद्धान्न और तर्पण का जल न मिले तो, वे तृषार्त रहते हैं। तो वे क्या प्यासे रह कर भूखों मरेंगे ? और क्या पितृलोक में सब दरिद्रता ही दरिद्रता है ? सारांश यह कि सब समझ और विचार ठीक नहीं है, क्योंकि देवलोक में या पितृलोक में कुछ न्यूनता नहीं है। होम हवन उनके उद्देश्य से कर्त्तव्य नहीं हैं। किन्तु सुवृष्टि और वायु-शुद्धि होम हवनादि से होती है, इसलिये होम करना चाहिये।"

(उ० म० पूना का व्या० ७ यज्ञ और संस्कार विषय)

क्या अतर, कस्तूरी और पुष्प आदि सुगन्धित चीजों से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि नहीं हो सकती ?

(१) "यह कार्य अन्य किसी प्रकारसे सिद्ध नहीं हो सकता,क्योंकि अतर और पुष्पादि का सुगन्ध तो उसी दुर्गन्ध वायु में मिल के रहता है, उसको छेदन करके बाहर नहीं निकाल सकता और न वह (दुर्गन्ध वायु) ऊपर चढ़ सकता है, क्योंकि उसमें हलकापन नहीं होता। उसके उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नहीं सकता, क्योंकि खाली जगह के बिना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता, फिर सुगन्ध और दुर्गन्धयुक्त वायु के वहीं रहने से रोगनाश आदि फल भी नहीं होते।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद विषय)

(२) "उस सुगन्ध का (अर्थात अतर पुष्पादिकी सुगन्धका) वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर, शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके, क्योंकि

उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्ध-युक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

क्या होम न करने से पाप भी होता है ?

(१) "हां, क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियोंको दुःख प्राप्त करता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है, इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये।"

(स० प्र० स० ३)

(२) "जहां जितने मनुष्यादिके समुदाय अधिक होते हैं, वहां उतना ही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं, किन्तु मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि हस्ति आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिये इकट्ठा करते हैं, इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है, सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है। इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टि जल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है, तो उसका निवारण करना भी उनको ही योग्य है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद विषय)

क्या अग्निहोत्र स्त्री पुरुष दोनों मिल कर करें ?

"सायं प्रातः दोनों सन्धि बेलाओं में सन्ध्योपासन करें, इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें।"

(संस्कारविधि गृहस्थ)

यदि अग्निहोत्र के समय स्त्री पुरुष दोनों उपस्थित न हों, तो फिर क्या किया जाय ?

"किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें, तो एक ही स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे, अर्थात् एक २ मन्त्र को दो दो वार पढ़के दो दो आहुति करे।"

(संस्कारविधि गृहस्थ)

यज्ञ की सामान्य विधि (जो सब संस्कारों में कर्तव्य है)

यज्ञ समिधा

"पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें। परन्तु यह समिधा कीड़ा लगीं, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों।"

(संस्कार विधि)

ऋत्विज कैसे हों ?

(१) "अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मत वाले (और) वेद वित्त (हों)।"

(संस्कार विधि सामान्यप्रकरण)

(२) "धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीति से जानने हारा, विद्वान्, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपरि गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।"

(संस्कार विधि जातकर्म)

ऋत्विज कितने हों ?

"एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करें। जो एक हो तो उसका (नाम) "पुरोहित" (होता है) और जो दो हों तो "ऋत्विक्", "पुरोहित" (कहलाते हैं), और (जो) तीन हों, तो "ऋत्विक्", "पुरोहित" और "अध्यक्ष", और जो चार हों तो "होता", "अध्वर्यु", "उद्गाता" और "ब्रह्मा" (कहलाते हैं)।"

(संस्कार विधि सामान्य प्रकरणम्)

ऋत्विजों का अपना अपना आसन कहां पर हो ?

"इन का आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् "होता" का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, "अध्वर्यु" का उत्तर आसन दक्षिण मुख, "उद्गाता" का पूर्व आसन पश्चिम मुख और "ब्रह्मा" का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये। और "यजमान" का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख, अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे।"

(संस्कार विधि सामान्यप्रकरणम्)

ऋत्विजों का कर्तव्य कर्म

"उपस्थित कर्म के विना (वे) दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें।"

(संस्कार विधि सामान्यप्रकरणम्)

ऋत्विजों की आचमन विधि

"अपने अपने जलपात्र से सब जन जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे······
······आचमन करें।"

(संस्कार विधि सामान्य प्रकरणम्)

संस्कारों में मन्त्रोच्चारण यजमान स्वयं करे

"सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे········यदि यजमान न पढ़ा हो, तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़, मन्दमति, काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है। अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में (यदि) असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे।"

(संस्कार विधि सामान्यप्रकरणम्)

संस्कारों में दर्शक महाशय कैसे व्यवहार करें ?

"जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् २ मौन करके बैठे रहें। कोई बात चीत, हल्ला गुल्ला न करने पावें। सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें।"

(संस्कार विधि सामान्यप्रकरणम्)

ऋत्विजों को क्या दक्षिणा दें ?

"ऋत्विजों के वरण के लिये सोने के कुण्डल और अंगूठी तथा सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहियें। यजमान और उसकी पत्नी को पहरने के लिये क्षौम अर्थात् रेशम के चार सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहियें।"

(संस्कार विधि सामान्यप्रकरणम्)

"गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता, सद्धर्मी, लोकप्रिय, परोपकारी, सज्जन, विद्वान् वा त्यागी पक्षपात-रहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सबके कल्याणार्थ वर्त्तने वाले हों, उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथा सामर्थ्य सत्कार करें।"

(संस्कार विधि सामान्यप्रकरण)

मांस भक्षण और पशु हिंसा

मांस भक्षण और वेद

"और जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाम मार्गी टीकाकारों की लीला है, इसलिये उनको "राक्षस" कहना उचित है। परन्तु वेदों में कहीं माँस खाना नहीं लिखा।"

(सत्यार्थ प्रकाश स० १२)

"दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी।"

(गो करुणा निधि)

"इसलिये यजुर्वेद के प्रथम ही मन्त्र में परमात्मा की आज्ञा है कि (अघ्न्याः + यजमानस्य पशून् पाहि) हे पुरुष तू इन पशुओं को कभी मत मार।"

(गो करुणा निधि)

"वाम मार्गियों ने मिथ्या कपोलकल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना, अर्थात्......मांस खाने......आदि दुष्ट कामों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलङ्क लगाया।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

मांस और हमारे पूर्वज

(१) "इसलिये ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे।"

(गो करुणा निधि)

(२) "जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है।"

(स० प्र० स० ४)

नोटः—यह वाक्य महर्षि ने पाराशरी के श्लोक के खंडन में लिखा है—सम्पादक।

(३) माता पिता और आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को......कहें कि जितनी क्षुधा हो, उससे कुछ न्यून भोजन करें और मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें।"

(स० प्र० स० २)

मांस से बुद्धि का नाश

"वाह! वाह! यह बुद्धि का विपर्य्यास आपको मांसाहार ही से हुआ होगा।"

(गो करुणा निधि)

क्या बिना हिंसा किये अर्थात् मरे हुए पशु का मांस खाना भी पाप है?

"जो मरे पश्चात् उनका मांस खावे तो उसका स्वभाव मांसाहारी होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी नहीं बच सकेगा, इसलिये किसी अवस्था में भी मांस नहीं खाना चाहिये।"

(गो करुणा निधि)

क्या रोग निवारणार्थ भी मांस न खायें ?

"बिना मांस के रोगों का निवारण भी औषधियों से यथावत् होता है, इसलिये मांस खाना अच्छा नहीं।"

(गो० करुणा नि०)

क्या मांस खाने से शरीर में बल आता है ?

"भला तनिक विचार तो करो कि छिलकों के खाने से अधिक बल होता है, अथवा रस और जो सार है, उसके खानेसे मांस छिलके के समान और घी दूध सार रस के तुल्य है, इसको जो युक्ति-पूर्वक खावे, तो मांस से अधिक गुण और बलकारी होता है। फिर मांस का खाना व्यर्थ और हानिकारक अन्याय, अधर्म और दुष्ट कर्म क्यों नहीं ?"

(गो० करु० नि०)

मांस भक्षण अधर्म क्यों है ?

"मांस भक्षण करने, मद्य पीने (और) पर स्त्री गमन करने आदि में दोष नहीं हैं, यह कहना छोकड़ापन है। क्योंकि बिना प्राणियों को पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं।"

(स० प्र० स० ११)

मांस भक्षण में कितने आदमी पाप के भागी होते हैं ?

"जो कोई मांस न खावे, न उपदेश और न अनुमति आदि देवे। तो पशु आदि कभी न मारे जावें, क्योंकि इस व्यवहार में, बहकावट, लाभ और बिक्री न हो, तो प्राणियों का मारना बन्द ही हो जावे। इसमें प्रमाण भी है:—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥

(मनु:० अ० ५। श्लो० ५१)

अर्थः-

अनुमति (मारने की सलाह) देने, मांस के काटने, पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिए लेने और बेचने, माँस के पकाने, परसने और खाने वाले, (यह) ८ (आठ) मनुष्य घातक, हिंसक, अर्थात् यह सब पाप कारी हैं।"

(गो० करु० नि०)

परोपकारी पशुओं के मारने वाले नीच लोग

"शुभ-गुण-युक्त, सुख-कारक पशुओं के गले छुरों से काटकर, जो अपने पेट भर, सब संसार की हानि करते हैं, क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वास-घाती, अनुपकारी, दुःख देने वाले, और पापी जन होंगे ?"

(गो० करु० नि०)

क्या मांसाहारियों में दया होती है ?

"देखो ! मांसाहारी मनुष्यों में दया आदि उत्तम गुण होते ही नहीं, किन्तु वे स्वार्थवश होकर दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने ही में सदा तत्पर रहते हैं। जब मांसाहारी किसी पुष्ट पशु को देखता है, तभी उसकी इच्छा होती है कि इसमें मांस अधिक है, इसे मारकर खाऊँ, तो अच्छा हो। और जब मांस का न खाने वाला उसको देखता है, तो वह प्रसन्न होता है कि यह पशु आनन्द में है…… इसलिये मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं।"

(गो० करु० नि०)

मांस वा शराब में कब प्रवृत्ति होती है ?

(१) "जब विषयासक्त हुए, तो मांस मद्य का सेवन गुप्त २ करने लगे।"

(स० प्र० स० ११)

(२) "मद्य भी मांस खाने का ही कारण है।"

(गो० करु० नि०)

मांसाहारियों के हाथ का न खाना चाहिये।

(१) "मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांस के परमाणुओं ही से पूरित है, उनके हाथ का न खावे। (२) हाँ, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्य्यों को भी मद्य मांसादि खाना पीना (रूपी) अपराध पीछे लग पड़ता है।"

(स० प्र० स० १०)

नोटः—ऋषिवर ने "सत्यार्थ प्रकाश" के चौथे समुल्लास में यह भी लिखा है कि वर वधू जब एक दूसरे को चुनने के लिए एक दूसरे के गुण कर्म स्वभाव की परीक्षा करें, तो यह भी देख लें कि दोनों मद्य मांस आदि दोषों से पृथक हैं या नहीं।"

(सम्पादक)

क्या विदेश में भी मांस का सेवन न करें ?

"देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में जाने के लाभ और वहाँ के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानने वालों की मूर्खता का वर्णन करते हुए, ऋषिवर लिखते हैं कि:—

"हाँ, इतना कारण तो है कि जो लोग मांस भक्षण और मद्यपान करते हैं, उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिये उनके संग करने से (कहीं) आर्य्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें, यह तो ठीक है।"

"हाँ, इतना (तो) अवश्य चाहिये कि मद्य मांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें।

(स० प्र० स० १०)

विदेशी राज्य और पशु हिंसा।

"देखो ! जब आर्य्यों का राज्य था, तब यह महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशोंमें बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे, क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे, (परन्तु) जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं, तब से क्रमशः आर्य्यों के दुःख की बढ़ती ही होती जाती है।"

(स० प्र० स० १०)

यदि राजपुरुष हानिकारक पशुओं वा मनुष्यों को मार दें, तो फिर क्या उनका मांस फैंक दें ?

"(उत्तर) चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें, वा जला देवें, अथवा कोई मांसाहारी खावे, तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।"

(स० प्र० स० १०)

भक्ष्य और अभक्ष्य भोजन क्या होता है ?

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल कपट, आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है, वह "अभक्ष्य" और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना "भक्ष्य" है।"

(स० प्र० स० १०)

क्या परमेश्वर मांस खाने की आज्ञा देता है ?

"जो वह (खुदा) क्षमा और दया करने हारा है, तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी ? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं ?"

(स० प्र० स० १४)

नोटः...यह लेख महर्षि ने मुसलमानों के सिद्धान्त के खण्डन में लिखा है। यहां तात्पर्य यह है कि दयालु परमेश्वर प्राणियों को कतल करने और उनका मांस खाने की आज्ञा नहीं दे सकता, प्राणियों की हिंसा ईश्वर-आज्ञा के सर्वथा विरुद्ध है।

(सम्पादक)

सृष्टि नियम के दृष्टान्त द्वारा मांस भक्षण का खण्डन

"मनुष्य और बन्दर की आकृति भी बहुतसी मिलती है। जैसे मनुष्यों के हाथ, पग और नख आदि होते हैं, वैसे ही बन्दरों के भी हैं। इसलिये परमेश्वर ने मनुष्यों को दृष्टान्त से उपदेश किया है कि जैसे बन्दर मांस कभी नहीं खाते, और फलादि खाकर निर्वाह करते हैं, वैसे तुम भी किया करो। जैसा बन्दरों का दृष्टान्त सांगोपाङ्ग मनुष्यों के साथ घटता है, वैसे अन्य किसी का नहीं। इसलिये मनुष्यों को अति उचित है कि मांस खाना सर्वथा छोड़ देवें।"

(गो० करु० नि०)

मांसाहारियों के प्रति बेज़बानों के वकील महर्षि दयानन्द की अपील और ईश्वर से प्रार्थना

"हे मांसाहारियो! तुम लोगों को जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं?

'हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर, जो कि बिना अपराध (के) मारे जाते हैं, दया नहीं करता? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है? क्या उनके लिये तेरी न्याय सभा बन्द हो गई है? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता और उनकी पुकार नहीं सुनता? क्यों इन मांसाहारियों के आत्मा में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता? जिससे यह इन बुरे कामों से बचें।"

(गो० करुणानिधि)

बेज़बान पशुओं की ओर से मनुष्यों के प्रति अपील

"हे धार्मिक सज्जन लोगो! आप इन पशुओं की रक्षा तन मन और धन से क्यों नहीं करते? हाय!! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय बकरे आदि पशु और मोर आदि पक्षियों को मारने के लिये ले जाते हैं, तब वे अनाथ तुम हमको देख के राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं कि देखो! हमको बिना अपराध बुरे हाल से मारते हो, और हम रक्षा करने तथा मारने वालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिये उपस्थित रहना चाहते हैं और मारे जाना नहीं

चाहते। देखो हम लोगों का सर्वस्व परोपकार के लिये है और हम इसलिये पुकारते हैं कि हमको आप लोग बचावें। हम तुम्हारी भाषा में अपना दुःख नहीं समझा सकते और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो क्या हम में से किसी को कोई मारता, तो हम भी आप लोगों के सदृश अपने मारने वाले को न्याय व्यवस्था से फांसी पर न चढ़वा देते ? हम इस समय अतीव कष्ट में हैं, क्योंकि कोई भी हमको बचाने में उद्यत नहीं होता, और जो कोई होता (भी) है, तो उससे मांसाहारी द्वेष करते हैं।"

(गो० करु० नि०)

मांसाहार का सर्वथा निषेध

"इस कारण मांसाहार का सर्वथा निषेध होना चाहिये।"

(गो० करु० नि०)

यज्ञ में पशुहिंसा

(१) "पशु मार के होम करना वेदादि सत्य शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

(२) "यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं, ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं। उनसे पूछना चाहिये कि (यदि) वैदिकी हिंसा, हिंसा न हो, तो तुझे और तेरे कुटुम्ब को मारके होम कर डालें, तो क्या चिन्ता है ?

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

(३) "तनिक विचारिये ! कि बैल आदि को परमेश्वर के आगे उसके भक्त मारें और वह (ईश्वर) मरवावे, और लोहू को चारों ओर छिड़कें, अग्नि में होम करें, ईश्वर सुगन्ध लेवे, भला यह कसाई के घर से कुछ कमती लीला है ?

(स० प्र० स० १३)

(४) "यदि ईसाइयों का परमेश्वर पशुओं की भेंट लेने वाला है तो—

"वह अहिंसक और ईश्वर कोटि में गिना कभी नहीं जा सकता, किन्तु मांसाहारी प्रपञ्ची मनुष्य के सदृश है।"

(स० प्र० स० १३)

(५) पशुओं की बलि चढ़ाने के विषय में महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं कि—

"ऐसी २ बुरी बातें बाइबल में भरी हैं। इसी के कुसंस्कारों से वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं, परन्तु वेदों में ऐसी बातों का नाम भी नहीं।"

(स० प्र० स० १३)

(६) "होम तो देवताओं का हो और मांस पशुओं का तथा मनुष्यों का रक्खें, तो कहो यह व्यवस्था कैसे ठीक २ है ? ऐसी व्यवस्था परमेश्वर बनावेगा, यह हमें तो निश्चय नहीं होता, अर्थात् ऐसी व्यवस्था को अन्यायके सिवाय (और) क्या कह सकते हैं ?"

(उपदेश मं० व्या० ६ यज्ञ विषय)

(७) "अब देखिये सज्जन लोगो ! जिनका अर्थात् ईसाईयों का) ईश्वर बछड़े का मांस खावे, उसके उपासक गाय बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें ? जिसको कुछ दया नहीं और (जो) मांस के खाने में आतुर रहे, वह बिना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है ?

(सत्यार्थप्रकाश स० १३)

(८) ईसाईयों के इस सिद्धान्त पर कि अपराध क्षमा कराने के लिये कपोत के दो बच्चे परमेश्वर के लिये बलि चढ़ाये गये, ऋषिवर लिखते है कि:—

"एक तो पाप किया और दूसरे जीवों की हिंसा की और खूब आनन्द से मांस खाया और पाप भी छूट गया। भला कपोत के बच्चे का गला मरोड़ने से वह (कपोत) बहुत देर तक तड़पता (रहा) होगा, तब भी ईसाईयों को दया नहीं आती। दया क्योंकर आवे ? इनके ईश्वर का उपदेश ही हिंसा करने का है।"

(स० प्र० स० १३)

(९) ईश्वर सब प्राणियों का पिता है और सब प्राणी उसके पुत्र हैं, ऐसा भाव दिखला कर महर्षि लिखते हैं कि:—

"भला कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका माँस खिलावे, ऐसा कभी हो सकता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १३)

(१०) "घोड़, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाम मार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

मद्यपान (शराब)

"इसलिये सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिए।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १३)

"मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है, क्योंकि अब तक वाममार्गियों के बिना किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध (ही) है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

खान पान और आचार अनाचार

भक्ष्याभक्ष्य कै प्रकार का होता है ?

"भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है, एक धर्म शास्त्रोक्त (और) दूसरा वैद्यक शास्त्रोक्त।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

दो प्रकार के भक्ष्याभक्ष्य के लक्षण

(१) "जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छलकपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है, वह "अभक्ष्य" और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना "भक्ष्य" है।"

(२) "जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि, बल, पराक्रम वृद्धि और आयु वृद्धि होवे, उन तण्डुलादि गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब "भक्ष्य" कहाता है।"

(३) "जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं, उन उन का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिये विहित है, उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी "भक्ष्य" है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

किस प्रकार की सब्ज़ी खानी चाहिये ?

"द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मलीन, विष्ठा-मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूलादि न खाना (चाहिये)।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

भोजन का स्थान

"जहां पर अच्छा रमणीय स्थान दीखे, वहां भोजन करना चाहिये।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

"जहां भोजन करे, उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने और कूरा कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये, न कि मुसलमान वा ईसाइयों के समान भ्रष्ट पाकशाला करना।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

क्या गाय के गोबर से लेपन करना चाहिये ?

"गाय के गोबर से······दुर्गन्ध नहीं होता······गोमय चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता (और) न मलीन होता है। जैसा मिट्टी से मैल चढ़ता है, वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहां रसोई बनती है वहाँ भोजनादि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है, उसमे मक्खी, कीड़ी आदि बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। जो उसमें झाड़ू लेपनादि से शुद्धि प्रतिदिन न की जावे, तो जानो पाखाने के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन गोबर, मिट्टी, झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना और जो पक्का मकान हो, तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये। इसमे पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति हो जाती है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

पृथक् पृथक् चौका लगाने की रीति कैसी है ?

"इस मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २, विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं·········जानो सब आर्य्यावर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

रसोई कौन बनावे ?

"(रसोई) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्य पालन और पशु पालन, खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र (में) तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावें।"

"आर्य्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें, परन्तु वे शरीर (और) वस्त्र आदि से पवित्र रहें। आर्यों के घर में जब (वे) रसोई बनावें, तब मुख बांध के बनावें। क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े। आठवें दिन क्षौर, नखच्छेदन करावें, स्नान करके पाक बनाया करें, आर्यों को खिला के आप खावें।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

क्या एक साथ खाने से देश का सुधार होता है ?

"आपस में आर्यों का एक भोजन होनेमें कोई भी दोष नहीं दीखता, (परन्तु) जब तक एक मत, एक हानि लाभ (और) एक सुख दुःख परस्पर न मानें, तब तक उन्नति होनी बहुत कठिन है, परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता, किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं (ग्रहण) करते, तब तक बढ़ती के बदले हानि (ही) होती है ।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

(२) ब्रह्म समाजियों के विषय में महर्षि लिखते हैं:—

"अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने पीने का भेद नहीं रखा। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जाति भेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा, परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहाँ है, उलटा बिगाड़ ही होता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

क्या एक साथ एक ही पत्तल वा प्याले में खाने में कोई दोष है ?

"(हाँ) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती, जैसे कुष्ठि आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है, वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है, सुधार नहीं।"

"न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावें, न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये बिना कहीं इधर उधर जाय।"

"(स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें) क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न २ है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

क्या भंगी चमार आदि के हाथ का खा लेना चाहिये ?

"जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोष-रहित रज वीर्य उत्पन्न होता है, वैसा चांडाल और चांडाली के शरीर में नहीं (होता)। क्योंकि (जैसा) चांडाल (का) शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है, वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं (होता), इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चांडालादि नीच भंगी चमार आदि (के हाथ) का न खाना।"

"भला अब कोई तुम से पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या (और) पुत्र-वधु का है, वैसा ही अपनी स्त्री का भी (होता) है, तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी स्व-स्त्री के समान बर्तोगे ? तब तुमको संकुचित हो कर चुप ही रहना पड़ेगा। जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है, तो क्या मलादि भी खाओगे ?"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

संस्कार

संस्कार किसे कहते हैं ?

'सस्कार उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

"जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं, इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।"

(संस्कार विधि भूमिका)

संस्कार कितने और कौन २ से हैं ?

संस्कार १६ हैं और उनके नाम यह हैं:—

(१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन (४) जात कर्म (५) नाम करण (६) निष्क्रमण (७) अन्न प्राशन (८) चूड़ा कर्म (६) कर्णवेध (१०) उपनयन (११) वेदारम्भ (१२) समावर्त्तन (१३) विवाह (१४) वान-प्रस्थ (१५) संन्यास (१६) अन्त्येष्टि कर्म।

(सम्पादक)

प्रत्येक संस्कार के करने का समय विधान

गर्भाधान संस्कार

(१) रजोदर्शन के दिन से ले के सोलहवें दिवस तक ऋतु-दान का समय है। उन में से प्रथम के चार दिन और एकादशी और त्रयोदशी त्याज्य हैं, शेष दश रात्रियों में कोई रात्रि हो (दिन में ऋतु दान का सर्वथा निषेध है) परन्तु यह ध्यान रहे कि उस दिन दोनों का शरीर आरोग्य हो, परस्पर प्रसन्नता हो, और किसी प्रकार का शोक न हो। जिस रात्रि में गर्भ स्थापन करने की इच्छा हो, उससे पूर्व दिन में "गर्भाधान संस्कार" का समय है।

(सम्पादक)

(२) "तत्पश्चात् (अर्थात विवाह संस्कार समाप्त होजाने पर) यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके विदा कर देवें…………

तत्पश्चात (जब) दस घटिका रात्रि जाय, तब वधु और वर पृथक् २ स्थान में भूमि में बिछौना करके तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे। तत्पश्चात् चौथे दिवस विधि-पूर्वक गर्भाधान संस्कार करें। यदि चौथे दिवस कोई अड़चल आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्य व्रत में दृढ़ रहकर जिस दिन दोनों की इच्छा हो............और गर्भाधान की रात्रि भी हो, उस रात्रि में यथा विधि गर्भाधान करें।"

"यदि किसी विशेष कारण से श्वशुरगृह में गर्भाधान संस्कार न हो सके, तो वधु वर चार आहार और विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ होकर.........विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें और जो वर दूसरे देश से विवाह के लिये आया हो, तो वह जहां, जिस स्थान में विवाह करने के लिये जाकर उतरा हो, उस स्थान में गर्भाधान करें।"

(संस्कार विधि विवाह संस्कार)

पुंसवन संस्कार

"गर्भस्थिति ज्ञान समय से दूसरे वा तीसरे महीने में "पुंसवन संस्कार" का समय है।"

सीमन्तोन्नयन संस्कार

"(आश्वलायन गृह्य सूत्रानुसार) गर्भमास के चौथे महीने में शुक्ल पक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो।"

"(पारस्कर गृह्य सूत्रानुसार) छठे आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष नक्षत्र-युक्त चन्द्रमा के दिन "सीमन्तोन्नयन संस्कार" करे।"

(संस्कार विधि)

जातकर्म संस्कार

बालक के जन्म होने पर।

नामकरण संस्कार

"जिस दिन (बालक का) जन्म हो, उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ११ में वा १०१ (एक सौ एक) में अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे।"

(संस्कार विधि)

निष्क्रमण संस्कार

"उसका समय, जब अच्छा देखे तभी बालक को बाहर घुमावें, अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावे।"

(संस्कारविधि)

अन्न प्राशन संस्कार

"तभी करें जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे।"

"छठे महीने बालक को अन्न प्राशन करावे।"

"(जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो, उसी दिन यह संस्कार करे।"

(संस्कारविधि)

चूड़ाकर्म (अर्थात् मुण्डन) संस्कार

"बालक के जन्म से तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना।

(संस्कारविधि)

कर्णवेध संस्कार

"बालक के कर्ण वा नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे वा पांचवें वर्ष का उचित है।"

नोटः—"(कर्ण वा नासिक वेध) चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से करावें, जो नाड़ी आदि को बचा कर वेध कर सके।"

(संस्कारविधि)

उपनयन संस्कार

(१) "जिस दिन जन्म हुआ हो, अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो, उससे ८ (आठवें) वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें।"

(२) "तथा ब्राह्मण के १६ (सोलह) क्षत्रिय के २२ (बाईस) और वैश्य के बालक का २४ (चौबीस) से पूर्व २ यज्ञोपवीत चाहिये, यदि पूर्वोक्त काल में इन का यज्ञोपवीत न हो, तो वे पतित माने जावें।"

(३) "(मनुस्मृति का प्रमाण देकर) जिसको शीघ्र विद्या, बल, और व्यवहार करने की इच्छा हो, और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों, तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पांचवें, क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छटे, और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें, परन्तु यह बात तब सम्भव है कि जब बालक के माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे, उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठ बुद्धि और शीघ्र समर्थ पढ़ने वाले होते हैं। जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो, कि जब यह पढ़ने के योग्य हुआ तभी यज्ञोपवीत करा देवें।"

(संस्कार विधि, उपनयन संस्कार)

वेदारम्भ संस्कार

"जो दिन उपनयन संस्कारका है, वही वेदारम्भका है, यदि उस दिवसमें न हो सके, अथवा करने की इच्छा न हो, तो दूसरे दिन करे, (और) यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो, तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे।"

(संस्कार विधि)

समावर्त्तन संस्कार

"जब वेदों की समाप्ति हो, तब समावर्त्तन संस्कार करे।"

(संस्कार विधि)

विवाह संस्कार

(१) "उत्तरायण शुक्ल पक्ष, अच्छे दिन, अर्थात जिस दिन प्रसन्नता हो, उस दिन विवाह करना चाहिये, और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये।"

(संस्कार विधि)

(२) "प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण............करना चाहिये।"

(संस्कार विधि)

(३) नोटः—यह नक्षत्रादि का विचार कल्पना-युक्त है, इसमे प्रमाण नहीं।"

(संस्कार विधि, फुट नोट, विवाह)

(४) जब कन्या रजस्वला होकर.............शुद्ध हो जाए, तब जिस दिन गर्भाधान रात्रि निश्चित की हो, उसमें विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये।"

(संस्कार विधि)

गृह प्रवेश

जब घर बन चुके और अच्छी तरह शुद्धि हो जाय, और जिस दिन गृह-पति का चित्त प्रसन्न होवे, उसी शुभ दिन गृह-प्रतिष्ठा करे।

वानप्रस्थ, और संन्यास संस्कार

इनके विषय में "वानप्रस्थ" और "संन्यास" प्रकरण में देखो।

अन्त्येष्टि कर्म संस्कार

यह संस्कार मरने पर किया जाता है।

प्रत्येक संस्कार में किस २ वस्तु की जरूरत होती है?

गर्भाधान संस्कार

(१) भात (२) दूध (३) शक्कर (४) कांसी का उदक पात्र भात को चाँदी वा काँसे के पात्र में रख के, उसमें दूध और शक्कर मिला के अग्नि में आहुतियाँ देनी पड़ती हैं।

कांसी के उदक पात्र में स्रुवा का शेष घृत टपकाया जाता है।

पुंसवन संस्कार

(१) बड़ के कूपल, (२) गिलोय।

वट वृक्ष के कोमल कूपल और गिलोय, इनको महीन कपड़े में छाँन कर गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुंघावे।

सीमन्तोन्नयन संस्कार

(१) खिचड़ी (२) भात (३) सुगन्ध तेल (४) कंघा (५) वीणा।

"खिचड़ी, अर्थात् चावल, तिल, मूँग, इन तीनों को सम भाग लेके, धो के, इनकी खिचड़ी बना, उसमें पुष्कल घी डाल के··· ·······आहुति देवें।"

"और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे।"

(संस्कार विधि)

भात की आहुति देनी होती है। सुगन्ध तेल और कंघा, इससे पति अपनी पत्नी के केशों को सुधारता है। वीणा आदि भी बजवावे।

जात कर्म संस्कार

(१) घी (२) मधु (३) सोने की शलाका (४) चावल (५) यव (जौ) (६) उष्ण जल (७) कलश (घड़ा) (८) भात (९) सरसों।

घी, मधु और सोने की शलाका=घी और मधु को मिला कर शलाका से बालक की जीभ पर "ओ३म्" अक्षर लिखे और चटाये। चावल और यव, पानी से पीस कर, और छानकर एक विन्दु बालक के मुख में छोड़ देवे। गर्म जल से स्त्री के स्तन प्रक्षालन करे। घड़ा, जल से भर कर प्रसूता के सिरहाने रखे। भात और सरसों, यह दोनों मिला कर दश दिन तक प्रसूत-स्थान में आहुतियाँ देवे।

नाम करण संस्कार

पत्री, अथवा जन्त्री।

तिथि और उसके देवता, नक्षत्र और उसके देवता निश्चित् करने के लिये जंत्री की ज़रूरत होती है।"

निष्क्रमण संस्कार

किसी विशेष वस्तु की ज़रूरत नहीं है।

अन्न प्राशन संस्कार

(१) भात (२) दही (३) सहत।

घृत-युक्त भात, अथवा दही, सहत और घृत, तीनों भात के साथ मिला के अन्न पाशन कराना चाहिये।

भात, इस प्रकार बनाये कि चावलों को धो, शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना, जब अच्छी तरह से पक जावें, तब उतार लेवें।

चूड़ा कर्म (मुंडन) संस्कार

(१) शरावे=४ (चार) (२) चावल (३) यव (जौ) (४) उर्द (५)तिल (६) गर्म जल (७) माखन, अथवा दही की मलाई (८) कंघा (६) दर्भ(कुशा) (१०) गोबर (११) शमी (जंडी) वृत्त के पत्ते।

एक शरावे में चावल, दूसरे में जौ, तीसरे में उर्द और चौथे में तिल भरकर वेदी में रख लेवे। गर्म पानी से शिर के बाल मल कर कंघा करके केशों के समूह को कुशा से बांधे। चौर पश्चात् माखन वा दही बालक के शिर पर मले। केश, कुशा, शमी पत्र और गोबर को नाई द्वारा जंगल में अथवा गोशाला में, अथवा नदी वा तालाब के किनारे पर गढ़ा खुदवा कर दबवा देवें।

उपनयन संस्कार

(१) मिष्टान्नादि (२) यज्ञोपवीत

मिष्टान्नादि से बालक, आचार्य और निमन्त्रित स्त्री पुरुषों को भोजन करावें। और बालक को यज्ञोपवीत धारण करावें।

वेदारम्भ संस्कार

(१) मेखला (२) कौपीन २ (३) अंगोछे ३ (४) एक उत्तरीय (५) कटिवस्त्र २ (६) दण्ड (७) मृगचर्म (८) भात।

ब्राह्मण को मुन्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुष संज्ञक तृण वा वल्कल की, और वैश्य को ऊन वा शण की सुन्दर चिकनी मेखला, दो शुद्ध कौपीन, दो अंगोछे एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे।

विवाह संस्कार

(१) हवन सामग्री (२) समिधा (३) घृत (४) काफूर (५) धूप बत्ती (६) वेदी सजाने के लिये कुङ्कुम, हलदो, मैदा, पत्ते, केले, बाँस, दण्ड आदि, (७) चन्दन की समिधा, ३ टुकड़े (८) दियासलाई (९) भात, खाने और होम के लिये (१०) खांड, (चीनी) हवन के लिये (११) सूप (छाज) (१२) चावल या जुवार की धाणी (१३) दण्ड (लाठी) (१४) कलश (घड़ा) (१५) शमी पत्र (जंडी के पत्ते) (१६) पत्थर की शिला (१७) मधुपर्क (दही, शहद और घी) (१८) उत्तम अन्न, होम के लिये (१९) आम के पत्ते, छींटे देने के लिये (२०) आसन, ८ वर वधु और ऋत्विजोंके लिये (२१) चौकी २, वर वधु के लिये (२२) थाल २ हवन सामग्री के लिये (२३) बाटी या चिलमची, हाथ पैर धोते समय जल धारण करने के लिये (२४) जल पात्र (लोटा आदि) पग धोने के लिये (२५) दूसरा शुद्ध लोटा, मुख धोने के लिये (२६) जल के उप-पात्र (गिलास आदि) ४ (२७) आचमनी (चमच) ४, आचमनार्थ वा मधुपर्क प्राशनार्थ (२८) काँसे के कौल ३, मधुपर्क को तीन भागों में करने के लिये (२९) पतीला घृतके लिये (३०) करछी, घृत डालनेके लिये (३१) गऊ आदि द्रव्य, स्वशक्ति अनुसार वर को अर्पण करने के लिये (३२) वर की ओर से वधु को देने के लिए उत्तम वस्त्र (३३) उपवस्त्र, वर वधु को देवे और वधु उस उपवस्त्रको यज्ञोपवीत वत धारण करे (३४) अधोवस्त्र,वर स्वयं धारण करे (३५) द्विपट्टा,वर स्वयं धारण करे (३६) धोती जोड़ा, प्रत्येक ऋत्विज को देने के लिये।

उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की विधि

क्या उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की भी कोई विधि है ?

"जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है, वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है। इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि (और) नीचता, और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है।"

(संस्कार विधि, गर्भाधान)

निर्दोष रजस् वीर्य का प्रभाव

"माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रुक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें, वैसे घृत, दुग्ध,

मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस् वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों।"

(स० प्र० स० २)

नोट—यहां "पूर्व" शब्द बड़ा रहस्यपूर्ण है। ओ हो! उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिये कितनी पहिले तैयारी करनी पड़ती है।

(सम्पादक)

ऋतुदान का कौनसा समय उत्तम है ?

(१) रजोदर्शन के दिन से लेके सोलहवें दिन तक ऋतुदान का समय है। उनमें (से) प्रथम की चार रात्रि······निन्दित हैं।"

(संस्कारविधि गर्भाधान)

नोट -दिन में ऋतु दान का निषेध है, अतः यहां पर "रात्रि" शब्द प्रयुक्त हुआ है।"

(सम्पादक)

(२) "रजोदर्शन के पांचवें दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है। उन (सोलह) दिनों में से (भी) प्रथम के चार दिवस त्याज्य हैं, (शेष) रहे १२ दिन, (सो) उनमें (से) एकादशी और त्रयोदशी रात्रि को छोड़ के, बाकी दश रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है और रजोदर्शन के दिन से लेके १६ वीं रात्रि के पश्चात् न समागम करना।"

"पुन: जबतक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे, तब तक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों।"

(स० प्र० स० २)

(३) ऋतु दान के सोलह दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे, उसको छोड़ देवें। इनमें स्त्री पुरुष रतिक्रिया न करें······रजोदर्शन के दिन से ले के सोलहवें दिन तक ऋतु समय है······। (उनमें प्रथम की) चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है।"

(संस्कार विधि गर्भाधान संस्कार)

कौनसी रात्रि ऋतुदान के लिये सबसे अच्छी है ?

(१) "जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी। गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्रि के गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहे तक है।"

(संस्कार विधि गर्भाधान)

(२) "हे वरानने! तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्न चित होकर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आरोह) चढ़ के शयन कर, और (इह) इस गृहाश्रम में स्थिर रहकर (अस्मै) इस (पत्ये) पति के लिये (प्रजां जनय) प्रजा को उत्पन्न कर।"

(संस्कार विधि गृहाश्रम, अथर्ववेद कांड १४ स० २ मं० ३१ की व्याख्या में)

पुत्र और कन्या की उत्पत्ति कैसे होती है ?

मनु अध्याय ३ श्लोक ४, ५ का हवाला देते हुये ऋषिवर लिखते हैं:—

"जिनको पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सौलहवीं, ये छः रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें, परन्तु इन में भी उत्तर श्रेष्ठ है और जिनकी कन्या की इच्छा हो, वे पांचवीं, सातवीं, नवीं और पन्द्रहवीं, ये चार रात्रि उत्तम समझें। इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे। पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा वन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य होने से गर्भ का न रहना वा रहकर गिर जाना होता है।"

(संस्कार विधि गर्भाधान)

क्या बिना रुचि वा परस्पर प्रसन्नता के समागम से कुछ हानि भी होती है ?

"यदि स्त्री पुरुष पर रुचि न रखे, वा पुरुष को प्रहर्षित न करे, तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में कामोत्पत्ति कभी न हो के सन्तान नहीं होते और यदि होते हैं, तो दुष्ट होते हैं।"

(संस्कार विधि गृहाश्रम, मनु अध्याय ३ श्लोक ६१ की व्याख्या में)

गर्भाधान क्रिया विधि

(१) "पुरुष वीर्य्य स्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है, उसी के अनुसार दोनों करें। जहां तक बने, वहां तक ब्रह्मचर्य के वीर्य को व्यर्थ न जाने दें, क्योंकि उस वीर्य वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है, वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो, उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर, और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र, अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े, और स्त्री वीर्य्य प्राप्ति समय अपानवायु को ऊपर खीचे, योनि को ऊपर संकोच कर, वीर्य का ऊपर आकर्षण कर के गर्भाशय में स्थित करे। (यह बात रहस्य की है, इसलिये इतने ही से समग्र बातें समझ लेनी चाहियें, विशेष लिखना उचित नहीं)।"

(२) "पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें········साठ, केसर, असगन्ध, छोटी इलायची और सालम मिश्री डाल, गर्म कर रखा हुआ जो ठण्डा दूध है, उस को यथा-रुचि दोनों पीके अलग २ अपनी २ शय्या में शयन करें, यह विधि जब २ गर्भाधान क्रिया करें तब २ करना उचित है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ४)

(३) "जब वीर्य (के) गर्भाशय में जाने का समय आवे, तब दोनों स्थिर शरीर, प्रसन्नवदन, मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रखें। वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे। जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रिय को ऊपर संकोच और वीर्य्य को खैंच कर स्त्री गर्भाशय में स्थिर करे। तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे, यदि शीत काल हो तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची डाल गर्म कर रखे हुये शीतल दूध का यथेष्ट पान करके तत्पश्चात् पृथक् २ शयन करें।"

(संस्कार विधि, गर्भाधान)

गर्भ स्थिति का निश्चय हो जाने के पश्चात् स्त्री पुरुष कैसे विचरें और गर्भ की कैसे रक्षा हो ?

(१) "जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भ स्थिति का निश्चय हो जाय, तब से एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये, क्योंकि ऐसा होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होती है।"

"ऊपर से भाषणादि, प्रेम-युक्त व्यवहार दोनों को अवश्य रखना चाहिये। पुरुष वीर्य की स्थिति और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन छादन इस प्रकार का करे कि जिससे पुरुषका वीर्य स्वप्नमें भी नष्ट न हो और गर्भमें बालकका शरीर अत्युत्तम, रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रम-युक्त होकर दशवें महीने में जन्म होवे।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ४)

(२) "स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिये। (गर्भ स्थिति के) पश्चात् एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री-पुरुष का सङ्ग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे कि जब तक सन्तान का जन्म न हो।"

(सत्यार्थ प्रकाश स० २)

(३) "कोई मादक मद्य आदि, रेचक हरीतकी आदि, क्षार अति लवणादि, अत्यम्ल, अर्थात् अधिक खटाई, रुक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लाल मिर्ची आदि,

स्त्री कभी न खावे, किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता, अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट, दधि, गेहूँ, उर्द, मूँग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें। उसमें ऋतु २ के मसाले, गर्मी में ठन्डे, सफेद इलायची आदि और सर्दी में केशर कस्तूरी आदि डालकर खाया करें। युक्ताहार विहार सदा किया करें। दधि में सुण्ठी, और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे, जिससे सन्तान अतिबुद्धिमान् रोग-रहित (और) शुभ गुण कर्म स्वभाव-वाला होवे।"

(संस्कार विधि, गर्भाधान संस्कार)

(४) "विशेष उस (गर्भ) की रक्षा चौथे महीने से और अति विशेष आठवें महीने से आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रुक्ष, मादक द्रव्य, बुद्धि और बल नाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन न करे, किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल गेहूँ, मूँग, उर्द, आदि अन्न पान और देश काल का भी सेवन युक्ति-पूर्वक करे।"

(स० प्र० स० ४)

(५) "इसके पश्चात् स्त्री सुनियम युक्ताहारविहार करे, विशेष कर गिलोय, ब्राह्मी ओषधि और शुण्ठि को दूध के साथ थोड़ी २ खाया करे और अधिक शयन, और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़ुवा, रेचक हरड़ें आदि न खावे, सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रखे, इत्यादि शुभाचरण करे।"

(संस्कार विधि, पुन्सवन्)

(६) गर्भ स्थिति ज्ञान हुए समय से दूसरे वा तीसरे महीने में पुन्सवन संस्कार जो किया जाता है, उसका उद्देश्य ही केवल यह है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये। "जिससे पुरुषत्व, अर्थात् वीर्य का लाभ होवे। यावत् बालक के जन्म हुए पश्चात् दो महीने न बीत जावें, तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रह कर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन, छादन, शयन, जाग्रणादि व्यवहार उसी प्रकार से करे, जिससे वीर्य स्थिर रहे और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे।"

(संस्कार विधि, पुन्सवन्)

(७) यह पुन्सवन संस्कार इस प्रयोजन से किया जाता है कि वीर्य्य को पुनः किसी प्रकार जमाया जावे। वीर्य्य में सदैव धैर्य्य और आरोग्यता के गुण रहने चाहिये। अन्यथा दोष-युक्त वीर्य्य से सन्तान में नाना प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये सूत्रकारों ने वीर्य्य की उन्नति और शान्ति के लिये ओषधियाँ बत

लाई हैं और यह भी कहा है कि गर्भ स्थिति के पश्चात् पुरुष को एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहना चाहिये।"

(पूना का व्या० ७, यज्ञ, संस्कार विषय)

बच्चा पैदा होने के पश्चात् क्या कर्तव्य है ?

(१) "ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे, पश्चात् धायी पिलाया करे, परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान पान माता पिता करावें। जो कोई दरिद्र हों, (और) धायी को न रख सकें, तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, (और आरोग्य करने हारी हों, उनको शुद्ध जल में भिजो, औटा, (और) छान के दूध के समान (बराबर वजन) जल मिलाके बालक को पिलावें।"

(स० प्र० स० २)

(२) "सन्तान के दूध पिलाने के लिये कोई धायी रखे। उसको खान पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे, परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रखे, किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो।"

(स० प्र० स० ४)

प्रसूता स्त्री अपना दूध अपने बालक को क्यों न पिलावे ?

"क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है, इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस ओषधि का लेप करे, जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसे करने से (प्रसूता स्त्री) दूसरे महीने में पुनरपि युवति हो जाती है।"

(स० प्र० स० २)

नोट:—दूध पिलाने का निषेध प्रसूता के शरीर और स्वास्थ्य रक्षा से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि प्रसव समय में प्रसूता अत्यन्त निर्बल हो जाती है और बालक को दूध पिलाने से प्रसूता के अधिक निर्बल होने की सम्भावना है। ऋषि का आशय केवल निर्बल स्त्रियों को दूध पिलाने से रोकने का प्रतीत होता है, न कि आरोग्य और बलवती स्त्रियों को रोकने का है।

(सम्पादक)

फिर माता पिता कैसे व्यवहार करें कि जिस से सन्तान धर्मात्मा और दीर्घायु हो ?

"तब तक (अर्थात न्यून से न्यून एक वर्ष तक) पुरुष ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य

का निग्रह रखे..........स्त्री योनि सङ्कोचन (और) शोधन, और पुरुष वीर्य्य का स्तम्भन करे।........इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे (तो) उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु (और) बल पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी, कि जिससे सब सन्तान उत्तम, बल पराक्रम-युक्त, दीर्घायु,........(और) धार्मिक हों (गे)........पुनः सन्तान जितने होंगे, वे भी सब उत्तम होंगे।"

(स० प्र० स० २)

माता पिता का अपने बच्चों को उपदेश

(१) पहिला उपदेश

माता पिता को चाहिये कि अपनी सन्तान को वीर्य्य की रक्षा से आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति जना दें, और उन्हें इस प्रकार उपदेश करें:—

"देखो ! जिस के शरीर में सुरक्षित वीर्य्य रहता है, तब उस को आरोग्य, बुद्धि, बल, (और) पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इस के रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का सङ्ग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें।"

जिस के शरीर में वीर्य्य नहीं होता, वह नपुंसक, महा-कुलक्षणी (होता है) और जिस को प्रमेह रोग होता है, वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, (और) उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित हो कर नष्ट हो जाता है।"

"(इस लिये) जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण (और) वीर्य्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे, तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृह-कर्मों के करने वाले जीते हैं, तभी तक तुम को विद्या-ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।"

(स० प्र० स० २)

(२) दूसरा उपदेश

"माता पिता (और) आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो २ हमारे धर्म--युक्त कर्म हैं, उन २ का ग्रहण करो और जो २ (हमारे) दुष्ट कर्म हों, उन का त्याग कर दिया करो, जो २ सत्य जानें, उन २ का प्रकाश और प्रचार करें। किसी पाखण्डी (और) दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस २ उत्तम कर्म के लिये माता, पिता और आचार्य्य आज्ञा देवें, उस २ का यथेष्ट पालन करें... ... ...जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और

बल प्राप्त हो, उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें (और) करावें, अर्थात् जितनी क्षुधा हो, उस से कुछ न्यून भोजन करें (और) मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें।"

(स० प्र० स० २)

(३) तीसरा उपदेश

"माता, पिता और आचार्य्य आदि अपने सन्तानों तथा शिष्यों को ऐसा उपदेश करें कि:—

"हे पुत्रों वा शिष्य लोगों ! हमारे जो सुचरित्र, अर्थात् अच्छे काम हैं, तुम लोग उन्हीं का ग्रहण करो, किन्तु हमारे बुरे कामों को कभी नहीं। जो हमारे बीच में विद्वान् और ब्रह्म के जानने वाले धर्मात्मा मनुष्य हैं, उन्हीं के बचनों में विश्वास करो, और उन को प्रीति वा अप्रीति से, श्री वा लज्जा से, भय अथवा प्रतिज्ञा से, सदा दान देते रहो, तथा विद्या दान सदा करते जाओ।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोक्त--धर्म विषय)

छोटे अपने बड़ों की सेवा कैसे करें ?

पुत्र, पौत्र, स्त्री, भृत्य आदि के प्रति यह आज्ञा है कि:—

"उन सब (अर्थात् पिता, पितामहादि, माता, मातामहादि, आचार्य्य वा अन्य आयु और ज्ञान से वृद्धों) के आत्माओं को यथा--योग्य सेवा से प्रसन्न किया करो। सेवा करने के पदार्थ यह हैं:—।"

"जो उत्तम २ जल, अनेक विध रस, घी, दूध··· ···उत्तम २ अन्न··· ··· उत्तम २ फल हैं, इन सब पदार्थों से उन की सेवा सदा करते रहो, जिस से उन का आत्मा प्रसन्न होके तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे, कि उस से तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो।"

(पुन: पूर्वोक्त पुत्र, पौत्रादि यह कहें कि:—)

"हे··· ···पितृ लोगो ! तुम सब हमारे अमृत--रूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो और जिस २ पदार्थ की तुम को अपने लिये इच्छा हो, (और) जो २ हम लोग कर सकें, उस २ की सदा आज्ञा करते रहो। हम लोग मन वचन कर्मसे तुम्हारे सुख करनेमें स्थित हैं। तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ। जैसे तुम लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्य्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है, वैसे हम को भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये, जिस से हम को कृतघ्नता का दोष न प्राप्त हो।"

(उपर्युक्त उपदेश यजुर्वेद, अध्याय २, मंत्र ३४ की व्याख्या में महर्षिने लिखा है)

(सम्पादक)

(पञ्चमहायज्ञ विधि, पितृ यज्ञ)

ब्रह्मचर्य

सच्चे ब्रह्मचर्य्य का लक्षण

"जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय और जिनका वीर्य अधः स्खलित कभी न हो, उन्हीं का ब्रह्मचर्य्य सच्चा (होता है)।"

(स० प्र० स० ४)

ब्रह्मचर्य्य ही सुखों का मूल है

(१) "जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य्य, विद्याभ्यास अधिक होता है, वह देश सुखी, और जिस देश में ब्रह्मचर्य्य, विद्याग्रहण-रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है, वह देश दुःख में डूब जाता है, क्योंकि ब्रह्मचर्य्य विद्या के ग्रहण पूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ होता है।"

(स० प्र० स० ४)

(२) "ब्रह्मचर्य्य सेवन से यह बात होती है कि जब मनुष्य बाल्यावस्था में विवाह न करे, उपस्थ इन्द्रिय का संयम रखे, वेदादि शास्त्रों को पढ़ता पढ़ाता रहे, विवाह के पीछे भी ऋतुगामी बना रहे, और पर स्त्री गमनादि व्यभिचार को मन कर्म वचन से त्याग देवे, तब दो प्रकार का वीर्य्य, अर्थात् बल बढ़ाता है, एक शरीर का, दूसरा बुद्धि का, उसके बढ़ने से मनुष्य अत्यन्त आनन्द में रहता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

(३) "जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान होता है।"

(स० प्र० स० ३)

(४) "ब्रह्मचर्य्य जो कि सब आश्रमों का मूल है, उस के ठीक २ सुधरने से सब आश्रम सुगम और बिगड़ने से नष्ट हो जाते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका. वर्णाश्रम विषय)

ब्रह्मचर्य्य अधिक से अधिक कितना होना चाहिये ?

"४८ वें वर्ष से आगे पुरुष और २४ वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य्य न रखना चाहिये, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है और

जो विवाह करना ही न चाहें, वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकें, तो भले ही रहें, परन्तु यह काम पूर्ण विद्यावाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो कामके वेग को थाम के इन्द्रियों को अपने वशमें रखना।

(स० प्र० स० ३)

ब्रह्मचारी के लिये नियम

(१) "ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, माँस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा, अङ्गो का मर्दन, बिना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आंखों में अञ्जन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेश, नाच, गान और बाजा बजाना, द्यूत, जिस किसी की कथा, निन्दा, मिथ्याभाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें।"

"सर्वत्र एकाकी सोवे, वीर्य स्खलित कभी न करे, जो कामना से वीर्य स्खलित कर दे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य-व्रत का नाश कर दिया।"

. (सत्यार्थप्रकाश सं० ३)

(२) "जहां विषयों वा अधर्म की चर्चा भी होती हो, वहां (ब्रह्मचारी) कभी खड़े भी न रहें। भोजन छादन ऐसी रीति से करें कि जिससे कभी रोग, वीर्य हानि, वा प्रमाद न बढ़े। जो बुद्धि के नाश करने हारे नशा के पदार्थ हों, उनको ग्रहण कभी न करें।"

(व्यवहार भानुः)

दान

कुपात्र को दान देना कैसा होता है ?

"जैसे पत्थर की नौका में बैठ के जल में तरने वाला डूब जाता है, वैसे ही अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ४)

क्या दान देते समय सदैव सुपात्र कुपात्र का विचार करना चाहिये ?

"(हां) परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और औषध, पथ्य, स्थान के अधिकारी सब प्राणी मात्र हो सकते हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

क्या ब्राह्मण दान से अपनी जीविका करें ?

ब्राह्मणों के कर्तव्य कर्मों का वर्णन करते हुए ऋषिवर लिखते हैं:—

"तीन कर्म (अर्थात) पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना जीविका हैं, परन्तु "प्रतिग्रह: प्रत्यवर:"। (मनु०)

जो दान लेना है, वह नीच कर्म है, परन्तु पढ़ाके और यज्ञ कराके जीविका करनी उत्तम है।"

(संस्कार विधि, गृहस्थाश्रम)

नोट— यहां जो यज्ञ कराके जीविका करने का विधान है और दान लेना नीच कर्म कहा गया है, इससे ज्ञात होता है कि यज्ञ में प्राप्त हुई दक्षिणा की गणना "दान" में नहीं की गई है।

(सम्पादक)

अतिथि

अतिथि कौन होता है ?

(१) "जो मनुष्य पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, सत्यवादी, छलकपट रहित और नित्य भ्रमण करके विद्या धर्म का प्रचार और अविद्या अधर्म की निवृत्ति सदा करते रहते हैं उनको "अतिथि" कहते हैं।"

(२) "और "अतिथि" वह कहाता है कि जिसके आने जाने की कोई तिथि दिन निश्चित न हो।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पञ्चमहायज्ञ विषय)

(३) "जिसकी आने और जाने में कोई भी निश्चित तिथि न हो, तथा जो विद्वान् होकर सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तर के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है उसको "अतिथि" कहते हैं।"

(आर्योद्देश्य रत्नमाला)

अतिथि से पूर्व नहीं खाना चाहिये ?

संस्कार विधि, संन्यास प्रकरण में अथर्ववेद के मन्त्र १४, कांड ६ की व्याख्या करते हुये ऋषिवर लिखते हैं कि:—

"इसलिये जिस गृहस्थ के समीप अतिथि उपस्थित होवे, उसको पूर्व जिमा कर पश्चात् भोजन करना अत्युचित है।"

किस २ के घर का अन्न अतिथि को नहीं खाना चाहिये ?

"कुम्हार तथा गाड़ी से जीविका करने हारे, धोबी तथा मद्य को निकाल कर बेचने हारे, वेश्या, भड़ुआ, भांड, दूसरे की नकल (उतारने वाले) अर्थात् पाषाण

मूर्तियों के पूजक (पुजारी) आदि और अन्यायकारी राजा, उनके अन्न आदि ग्रहण अतिथि लोग कभी न करें।"

(संस्कार विधि गृहाश्रम संस्कार, मनु अध्याय ४ श्लोक ८५ की व्याख्या में)

शिक्षा (Education)

"शिक्षा" का उद्देश्य क्या होना चाहिये ?

(१) "जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे, और अविद्यादि दोष छूटें, उसको "शिक्षा" कहते हैं।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

"विद्या का यही फल है कि जो मनुष्य को धार्मिक होना अवश्य है। जिस ने विद्या के प्रकाश से अच्छा जानकर न किया और बुरा जान कर न छोड़ा, तो क्या वह चोर के समान नहीं है ? क्योंकि जैसे चोर भी चोरी को बुरी जानता हुआ करता और साहूकारी को अच्छी जानके भी नहीं करता, वैसा ही जो पढ़ के भी अधर्म को नहीं छोड़ता और धर्म को नहीं करने हारा मनुष्य है।"

(व्यवहार भानु)

वर्णोच्चारण की शिक्षा का आरम्भ घर में होना चाहिये

(२) "जब पाँच २ वर्ष के लड़का लड़की हों, तब (माता पिता) उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्य देशीय भाषाओं का भी (अभ्यास करावें)।"

(सत्यार्थप्रकाश स० २)

बच्चों की शिक्षा का आरम्भ किस प्रकार हो ?

"जन्म से ५ वें वर्ष तक बालकों का माता, छटे वर्ष से ८ वें वर्षतक पिता शिक्षा करे और ६ वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य-कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या दान करने वाली हों, वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें।"

(सत्यार्थप्रकाश स० २)

नोट—उपर्युक्त तीन शिक्षक ही आदर्श जीवन बनाने का एक मात्र साधन हैं। इसकी व्याख्या महर्षि आगे इस प्रकार से करते हैं।

(सम्पादक)

तीन शिक्षक

"जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है। वह कुल धन्य और वह सन्तान

बड़ा भाग्यवान् (है) जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता……… धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेके जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।"

(स० प्र० स० २)

विद्यालय कहाँ पर हों ?

(१) "विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहियं और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये।"

(स० प्र० स० ३)

(२) पाठशालाओं से एक योजन, अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहे"।

(स० प्र० स० ३)

विद्यार्थियों के भोजन छादन का प्रबन्ध किस प्रकार हो ?

"सबको तुल्य वस्त्र, (तुल्य) खान पान (और तुल्य) आसन दिये जायं। चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी (हो) हों, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये।"

उनके माता पिता अपने सन्तानों से, वा सन्तान अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या पढ़ने की चिन्ता रखें। जब भ्रमण करने को जावें, तब उनके साथ अध्यापक रहें, जिस से किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।"

(स० प्र० स० ३)

(Co-education)

क्या लड़के लड़कियों का संयुक्त (Mixed) विद्यालय हो ?

(१) "इसलिये (जब) आठ वर्ष के हों, तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें।"

(२) "द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके, यथोक्त आचार्य्य-कुल अर्थात् अपनी २ पाठशाला में भेजदें।"

(स० प्र० स० ३)

(३) "स्त्री और पुरुष, इन दोनों के विद्याभ्यास के लिये पृथक् २ आर्य विद्यालय, प्रत्येक स्थान में यथा सम्भव बनाये जावेंगे । स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियां द्वारा ही किया जावेगा और पुरुषों की पाठशाला में पुरुषों द्वारा, इससे विरुद्ध नहीं ।"

(मुम्बई नियम, संख्या २०)

(४) जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें । स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे, अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान, और सङ्ग । इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें, और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें, जिस से उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बल युक्त हो के आनन्द को नित्य बढ़ा सकें ।"

(स० प्र० स० ३)

पढ़ाने वाले अध्यापक और आचार्य्य कैसे हों ?

(१) "जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण-विद्या-युक्त (और) धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने (के) योग्य हैं ।"

(स० प्र० स० ३)

नोट:—लड़के लड़कियों के चरित्र निर्माण के लिये अध्यापकों का केवल विद्वान् होना ही पर्य्याप्त नहीं है, किन्तु उनका धार्मिक होना भी अत्यावश्यक है, क्योंकि धर्म से विहीन विद्वान् भी संसार के लिये हानिकारक हुआ करता है ।

(सम्पादक)

(२) आचार्य्य-कुल के लिये "आचार्य्य" जिस प्रकार होना चाहिये, उसके लक्षण महर्षि ने इस प्रकार वर्णन किये हैं:—

'आचार्य्य उसको कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द, अर्थ, सम्बन्धी और क्रिया का जानने हारा, छल-कपट रहित अति प्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी, तन, मन और धन से सबको सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेश सबका हितैषी, धर्मात्मा और और जितेन्द्रिय होवे ।"

(संस्कार विधि, उपनयन, फुटनोट)

(३) "जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे, उस को "आचार्य्य" कहते हैं।"

(आर्य्योद्देश्य रत्नमाला)

(४) "आचार्य्य उसको कहते हैं कि जो असत्याचार को छुड़ाके सत्याचार का और अनर्थों को छुड़ा के अर्थों का ग्रहण कराके ज्ञान को बढ़ा देता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वर्णाश्रम विषय)

(५) जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा-पूर्वक विद्या होने के लिये तन, मन और धन से प्रयत्न करे, उसको "आचार्य्य" कहते हैं।"

(व्यवहार भानुः)

(६) जो सांङ्गोपाङ्ग वेद विद्याओं का अध्यापक, सत्याचार का ग्रहण, और मिथ्याचार का त्याग करावे वह "आचार्य कहाता है।"

(स्वमन्तव्यामंतव्य)

अनिवार्य शिक्षा अर्थात् लाज़मी तालीम (Compulsory Education)

(१) "(ऐसा) राज नियम और जाति नियम होना चाहिये कि पाँचवें वा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के वा लड़कियों को घर में न रख सके। पाठ- शाला में अवश्य भेज देवे, जो न भेजे, (तो) वह दण्डनीय हो।"

(स० प्र० स० ३)

(२) "राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य्य में रख के विद्वान् कराना, जो कोई इस आज्ञा को न माने, तो उसके माता पिता को दण्ड देना, अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य-कुल में रहें, जब तक समावर्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावे।"

(स० प्र० स० ३)

समावर्तन के समय कितने प्रकार के स्नातक (Graduates) होते हैं ?

"विद्या स्नातक, वृत स्नातक, तथा विद्याव्रत स्नातक ये तीन प्रकार के स्नातक होते हैं।"

(संस्कार विधि, समावर्तन संस्कार)

तीन प्रकार के स्नातकों के लक्षण क्या हैं ?

"जो केवल विद्या को समाप्त, तथा ब्रह्मचर्य वृत को न समाप्त करके स्नान करता है, वह विद्या स्नातक, जो ब्रह्मचर्य वृत को समाप्त, तथा विद्या को न समाप्त

करके स्नान करता है, वह व्रतस्नातक, और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है, वह विद्या-व्रत स्नातक कहाता है।"

"इस कारण वेद की समाप्ति और ४८ (अड़तालीस) वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्या व्रत स्नान करे।"

(संस्कार विधि, समावर्तन)

संस्कृत और अंग्रेज़ी साथ २ पढ़नी चाहिये।

"पाठशाला में संस्कृत का काम ठीक २ होना चाहिये। जैसे मिशन स्कूलों में लड़के अपने अन्य स्वार्थ सिद्धि के लिये बाईबल सुन लेते हैं और कुछ ध्यान नहीं देते, वैसे जो संस्कृत सुन लिया, तो क्या लाभ होगा? इस पाठशाला में मुख्य संस्कृत, जो मातृ भाषा है, उसकी ही वृद्धि होनी चाहिये। वरन फ़ारसी का होना कुछ आवश्यक नहीं। केवल संस्कृत और राज भाषा अंग्रेज़ी, दो ही का पठन पाठन होना आवश्यक है, सो आधे २ समय दोनों जारी रहें और दोनों की परीक्षा भी माहवार बड़ी सावधानी और दृढ़ नियम के साथ हुआ करे और दोनों की ही अपेक्षा से कक्षा वा नम्बर की वृद्धि विद्यार्थियों की हुआ करे। और हम को सदैव परीक्षा पत्र भेजा करो। विशेष कर संस्कृत के विद्यार्थियों के माहवार पठन का ब्यौरा और किस कक्षा में कौन २ पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। कितनी २ हुई, यह सब सूचना दिया करें।"

(महर्षि का पत्र, ति० आषाढ़ वदी ६, सम्वत् १९३८,
ता० १७ जून १८८१ ई० अजमेर से,
श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी के नाम)

हमेशा ऋषि-कृत ग्रन्थों को ही पढ़ना चाहिये

(१) "ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे (ऋषि) बड़े, विद्वान्, सब शास्त्र वित् और धर्मात्मा थे, और अनृषि, अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं, और जिनका आत्मा पक्षपात सहित है, उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।"

(२) "जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है, वैसा इन क्षुद्र-आशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है? महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके, वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है, और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है, कि जहाँ तक बने, वहाँ तक कठिन रचना करनी, जिस को बडे परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना (और) कौडी का लाभ

होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना (और) बहुमूल्य मोतियों का पाना।"

(स० प्र० स० ३)

(३) "आजकल के अनार्ष नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषा वालों ने ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ न पढ़ कर नवीन क्षुद्रबुद्धि कल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर एक दूसरे की निन्दा में तत्पर हो के झूठा झगड़ा मचाया है, इनका कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं।"

(स० प्र० स० ८)

ऋषि-कृत ग्रन्थ भी वेदाधीन होने ही से प्रमाण हैं

"इन में (अर्थात् ऋषि-कृत ग्रन्थों में) भी जो २ वेद विरुद्ध प्रतीत हो, उस २ को छोड़ देना, क्योंकि वेद ईश्वर कृत होने से निर्भ्रान्त स्वतः, प्रमाण, अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण, अर्थात् इन के प्रमाण वेदाधीन है।"

(स० प्र० स० ३)

परित्याग के योग्य कौन से ग्रन्थ हैं ?

"अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं, उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है, अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे, वह २ जाल ग्रन्थ समझना चाहियेः—

व्याकरण,

"कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्ध बोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि।"

कोश,

"अमरकोशादि"

छन्दोग्रन्थ,

"वृत्तरत्नाकरादि"

शिक्षा,

"अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा, इत्यादि"

ज्योतिष,

"शीघ्र बोध, मुहूर्त्त चिन्तामणि"

काव्य,

"नायका भेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि"

मीमांसा,

"धर्म सिन्धु, वृताकादि"

वैशेषिक,

"तर्क संग्रहादि"

न्याय,

"जागदीशी आदि"

योग,

"हठ प्रदीपिकादि"

सांख्य,

"सांख्य तत्व कौमुद्यादि"

वेदान्त,

"योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि"

वैद्यक,

शारङ्गधरादि"

स्मृति,

"मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति"

अन्य,

"सब तन्त्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उप-पुराण, तुलसीदास-कृत भाषा-रामायण, रुक्मिणी मङ्गलादि"

नोटः—इन (अर्थात् उपर्युक्त) ग्रन्थों में 'थोड़ा सत्य तो है, परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है ··········जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है, वैसे यह ग्रन्थ (भी छोड़ने योग्य) हैं ।"

(स० प्र० स० ३)

पढ़ना हमेशा अर्थज्ञान सहित होना चाहिये

(१) "जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता, वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु, धान्य आदि का भार उठाता है, वैसे (वह मनुष्य भी) भारवाह अर्थात् भार को उठाने वाला है और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है, वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त हो के देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़, पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

अविद्वान् लोग इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते; किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का जानने वाला है, उसके लिये विद्या (ऐसी है) जैसे सुन्दर वस्त्र, आभूषण धारण करती अपने पति को कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है, वैसे विद्या, विद्वान् के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश कराती है, अविद्वानों के लिये नहीं ।"

"उस ब्रह्म को जो नहीं जानता, वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख का प्राप्त हो सकता है ? नहीं, नहीं । किन्तु जो वेदों को पढ़के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं, वह सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्ति-रूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं, इसलिये जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो, वह अर्थज्ञान सहित चाहिये ।'

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

(२) "अर्थज्ञान के बिना पढ़े कोई भी उत्तम फल को प्राप्त नहीं होसकता ।"

(३) "परन्तु कुछ भी नहीं पढ़ने वाले से तो पाठ-मात्र जानने वाला हो श्रेष्ठ है । जो वेदों को अर्थ सहित यथावत् पढ़ के शुभ गुणों का ग्रहण और उत्तम कर्मों को करता है, वही सबसे उत्तम होता है……।"

(४) "परन्तु जो कोई पाठ-मात्र ही पढ़ता है, वह उत्तम सुख को प्राप्त कभी नहीं हो सकता । इस कारण से जो कुछ पढ़ें सो अर्थ ज्ञान पूर्वक ही पढ़ें……"

(५) "और जो अर्थ का जानने वाला है, वह अधर्म से बचकर, धर्मात्मा हो के, जन्म मरण-रूप दुःख का त्याग करके, सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है, क्योंकि जो ज्ञान से पवित्रात्मा होता है, वह सर्व दुःख रहित होके मोक्ष सुख को प्राप्त होता है । इसी कारण वेदादि शास्त्रों को अर्थ ज्ञान सहित पढ़ना चाहिये ।"

(६) "जो मनुष्य केवल पाठ मात्र ही पठन क्रिया करता है, उसका वह पढ़ना अन्धकार रूप होता है । जैसे अग्नि के बिना सूखे ईंधन में दाह और प्रकाश नहीं होता, वैसे ही अर्थ-ज्ञान के बिना अध्ययन भी ज्ञान-प्रकाश रहित होता है, वह पढ़ना अविद्या रूप अन्धकार का नाश कभी नहीं कर सकता ।"

(७) "विद्वान् और अविद्वान् का यही लक्षण है कि जिस किस को पढ़ सुन के भी शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का यथार्थ ज्ञान न हो, वह मूर्ख अर्थात् अविद्वान् है और जो मनुष्य शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा विद्या के प्रयोजन को यथावत् जान ले, वह पूर्ण विद्वान् कहाता है । ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुष का विद्या के स्वरूप के ज्ञान से परमानन्द रूप फल भी होता है ।"

(८) "विद्वान् नाम उसका है जो कि अर्थ सहित विद्या को पढ़के वैसा ही आचरण करे, कि जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और परमेश्वर की प्राप्ति यथावत हो सके। इसी को स्थिरपीत कहते हैं। ऐसा जो विद्वान् है, वह संसार को सुख देने वाला होता है, उसको कोई भी मनुष्य दुःख नहीं दे सकता, क्योंकि जिस के हृदय में विद्यारूप सूर्य प्रकाशित हो रहा है, उसको दुःख रूप चोर दुःख कभी नहीं दे सकता।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पठन पाठन विषय)

(९) "जो मनुष्य अर्थ को समझे बिना अध्ययन वा श्रवण करते हैं, उनका सब परिश्रम निष्फल होता है।"

(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

विवाह

विवाह किसे कहते हैं ?

"जो नियमपूर्वक, प्रसिद्धि से (और) अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना (है), वह विवाह कहाता है।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

कौन गृहाश्रम में प्रवेश करे ?

"(मनु ३-२ की व्याख्या में) यथावत् ब्रह्मचर्य में—आचार्यानुकूल वर्त्तकर धर्म से चारों, तीन वा दो, अथवा एक वेद को साङ्गोपाङ्ग पढ़ के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो, वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ४)

कौन गृहाश्रम के अयोग्य है ?

(मनु० ३। ७९ का प्रमाण देकर)

"जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने (के) अयोग्य है, उसको अच्छे प्रकार धारण करे।"

(स० प्र० स० ४)

कब विवाह करे जिसमें सन्तान उत्तम उत्पन्न हो ?

"क्योंकि सोलहवें वर्ष (लड़की के) के पश्चात चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ और स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ४)

कन्या को कब अपना विवाह करना चाहिये ?

"(मनु० ६-६) कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे, जो प्रतिमास रजोदर्शन होता है, तो तीन वर्ष में ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।"

(स० प्र० स० ४)

यदि कन्या को सुयोग्य वर न मिले तो क्या करे ?

"चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे, परन्तु गुणहीन, असदृश (और) दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर-कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें।"

(संस्कार विधि, विवाह संस्कार)

वर-वधु की आयु में कितना अन्तर होना चाहिये ?

"स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी और अधिक से अधिक दूनी होनी चाहिये।"

(संस्कार विधि, विवाह संस्कार)

विवाह माता-पिता के अधीन होना चाहिये या लड़का-लड़की के अधीन ?

(१) "लड़का-लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है, जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें, तो भी लड़का-लड़की की प्रसन्नता बिना न होना चाहिये, क्यों-कि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता (है) और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है।"

(स० प्र० स० ४)

(२) जब से..........बाल्यावस्था में पराधीन, अर्थात् माता-पिता के आधीन विवाह होने लगा, तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है।"

(स० प्र० स० ४)

लड़का और लड़की एक दूसरी की परीक्षा कैसे करें ?

(१) जब स्त्री-पुरुष विवाह करना चाहें, तो विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का प्रमाणादि यथायोग्य होना चाहिये।

(स० प्र० स० ४)

(२) वधु और वर की आयु, कुल, वास्तव्य स्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें, अर्थात दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों।"

(३) "अब वधु वर एक दूसरे के गुण, कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें:—

दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता, सत्यमधुर्भाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहङ्कार, मत्सर, ईर्ष्या, काम, क्रोध, निर्लोभिता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट, द्यूत, चोरी, मद्य मांसादि दोषों का त्याग, गृह कार्यों में अति चतुरता हो।"

(४) जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके, तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्षमें परीक्षा करावें, पश्चात् उत्तम विद्वान स्त्री पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर सम्वाद करें।"

(संस्कार विधि, विवाह संस्कार)

क्या विवाह से पहले स्त्री पुरुष एकान्त में मिलें ?

"इसलिये यह निश्चय रखना चाहिये,कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिये, क्योंकि युवावस्था में स्त्री-पुरुष का एकान्त वास दूषण कारक होता है।"

"जब दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय, ··· ··· ··· ···तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता पिता आदि भद्र पुरुषों के सामने, उन दोनों की आपस में बात चीत शास्त्रार्थ कराना (चाहिये)।"

(स० प्र० स० ४)

कुमार और कुमारी का ही विवाह होना ठीक है

"कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय, और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्रीक पुरुष विवाह होने में अन्याय अर्थात अधर्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ (कुमार) पुरुष विवाह नहीं किया चाहता, वैसे ही विवाहित अर्थात स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कुमारी भी न करेगी।"

(स० प्र० स० ४)

(Marriage Versus free love)

विवाह के स्थान पर "स्वतन्त्र" प्रेम में क्या हानि है ?

"(विवाह के स्थान पर स्वतन्त्र प्रेम) यह पशु पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे, तो सब गृहाश्रम के अच्छे अच्छे व्यवहार नष्ट भ्रष्ट हो जायं। कोई किसी की सेवा भी न करे और महाव्यभि-

चार बढ़कर सब (लोग) रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र २ मर जायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महा व्यभिचार बढ़कर सब (लोग) रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर कुलों के कुल नष्ट हो जायं। कोई किसी के पदार्थ का स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकाल पर्यन्त स्वत्व रहै, इत्यादि दोषों के निवारणार्थ विवाह ही होना सर्वथा योग्य है।"

(स० प्र० स० ४)

विवाह अपने अपने वर्ण में होना चाहिये

"(विवाह) अपने अपने वर्ण में (होना चाहिये) परन्तु वर्ण व्यवस्था गुण कर्मों के अनुसार होनी चाहिये, जन्म मात्र से नहीं।"

(संस्कार विधि, विवाह संस्कार)

दूर विवाह के लाभ और निकट विवाह के दोष

"दूरस्थ अर्थात् जो अपने (पिता के) गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो, उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये।"

निकट और दूर विवाह करने में (दोष और) गुण यह हैं:—

(१) "जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है, वैसी प्रत्यक्ष में नहीं (होती)।"

(२) जो बालक बाल्यावस्था में निकट रहते हैं, परस्पर क्रीड़ा, लड़ाई और प्रेम करते, एक दूसरे के गुणदोष, स्वभाव या बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और जो नङ्गे भी एक दूसरे को देखते हैं, उनका परस्पर विवाह होंने से प्रेम कभी नहीं हो सकता।"

(३) "जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृ कुल में विवाह होने में धातुओं के अदल बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।"

(४) जैसे दूध में मिश्री वा शुंठ्यादि औषधियों के योग होने से उत्तमता होती है, वैसे ही भिन्न गोत्र, मातृ पितृ कुल से पृथक् वर्त्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।"

(५) "जैसे एक देश में रोगी हो, वह दूसरे देश में वायु और खान-पान के बदलने से रोग-रहित होता है, वैसे ही दूसरे देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।"

(६) "निकट सम्बन्ध करने में, एक दूसरे के निकट होने में सुख दुःख का भाव और विरोध होना भी सम्भव है, दूर देशस्थों में नहीं। और दूरस्थों के विवाह में दूर दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है, निकटस्थ विवाह में नहीं।"

(७) दूर दूर देश के वर्त्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं, इसलिये:—

दुहिता दुर्हिता दूरे हिता दोग्धेर्वा ॥ निरुक्त ३ । ४

कन्या का नाम दुहिता इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है, निकट रहने में नहीं।"

(८) "कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य् होने का भी सम्भव है, क्योंकि जब जब कन्या पितृकुल मे आवेगी, तब तब उसको कुछ न कुछ देना ही होगा।"

(९) "कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने पितृकुल के सहाय का घमण्ड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा, तब स्त्री झट ही पिता के कुल में चली जायगी, एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी, और विरोध भी, क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है। इत्यादि कारणों से पिता के एक गोत्र (और) माता की छः पीढ़ी और समीप देश में विवाह करना उचित नहीं।"

(स० प्र० स० ४)

किन कुलों में विवाह नहीं करना चाहिये ?

(मनु० ३ । ६ ।)

"चाहे कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध ये कुल हों, तो विवाह सम्बन्ध में निम्न लिखित दश कुलों का त्याग कर दें:—

"जो कुल सत्य क्रिया से हीन (हों) सत्पुरुषों से रहित (हों), वेदाध्यन से विमुख (हों), शरीर पर बड़े२ लोम (हों) अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ, और गलित-कुष्ठ युक्त हों, उन कुलों की कन्या वा वरके साथ विवाह होना न चाहिये, क्योंकि यह सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं"

(स० प्र० स० ४)

किस कन्या के साथ विवाह नहीं करना चाहिये ?

(मनु० ३ । ८ । ९)

"न पीले वर्ण वाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुष से लम्बी, चौड़ी, अधिक बलवाली, न रोग-युक्ता, न लोम रहित, न बहुत लोम वाली. न बकवाद करने वाली न भूरे नेत्रवाली।"

"नक्षत्र अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणी देई, रेवती बाई, चित्तारि आदि

नक्षत्र नाम वाली, तुलसिआ, गेंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली, आदि वृक्ष नाम वाली, गङ्गा, यमुना आदि नदी नाम वाली, चांडाली आदि अन्त्य नाम वाली, विंध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नाम वाली, कोकिला, मैना, आदि पक्षी नाम वाली, नागी, भुजंगा आदि सर्पनाम वाली, माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नाम वाली भीमकुंवरि, चण्डिक का, काली आदि भीषण नाम वाली कन्या के साथविवाह न करना चाहिये, क्योंकि यह नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं।"

(स० प्र० स० ४)

क्या विवाह विषय में किसी राज्य व्यवस्था की भी जरूरत है ?

(१) (संस्कार विधि गृहाश्रम संस्कार में अ० कां० १४ सू० २ सं० ६४ की व्याख्या में)

"हे (इन्द्र) परमैश्वर्य-युक्त विद्वन् राजन् ! आप (इह) इस संसार में (इमौ) इन स्त्री पुरुषों को समय पर विवाह करने की आज्ञा और ऐसी व्यवस्था दीजिये कि जिस से कोई स्त्री पुरुष पृष्ठ ८६—६३ में लिखे प्रमाण से पूर्व वा अन्यथा विवाह न कर सकें, वैसे (संनुद) सबको प्रसिद्धि से प्रेरणा कीजिये, जिससे ब्रह्मचर्य-पूर्वक शिक्षा को पाके (दम्पती) जाया और पति (चक्रवाकेव) चकवा चकवी के समान एक दूसरे से प्रेमबद्ध रहें और गर्भाधान संस्कारोक्त विधि से (प्रजया) उत्पन्न हुई प्रजा से (रानौ) यह दोनों (स्वस्त कौ) सुख युक्त हो के (विश्वम्) सम्पूर्ण १०० वर्ष पर्यन्त (आयुः) आयु को (व्यश्नुताम्) प्राप्त होवें ।"

नोटः—यहां दो प्रकार की राज्य व्यवस्था का वर्णन है। एक तो यह कि कोई लड़का लड़की ब्रह्मचर्य काल से पूर्व विवाह न करने पावें। यदि वे करें तो राज्यदण्ड के भागी हों। और दूसरी व्यवस्था यह है कि स्त्री पुरुष चकवा चकवी की तरह प्रेमबद्ध रहें और बहु विवाह न कर सकें।

(सम्पादक)

(२) (राजा) इस पर नित्य ध्यान रखे कि जहां तक बन सके। वहां तक बाल्यावस्था में विवाह न करने देवे। युवावस्था में भी बिना प्रसन्नता के विवाह न करना कराना और न करने देना, ब्रह्मचर्य का यथावत सेवन करना, व्यभिचार और बहु विवाह को बन्द करे कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहे।"

(स० प्र० स० ६)

गृहस्थाश्रम

गृहस्थाश्रम ज्येष्ठाश्रम क्यों है ?

मनु० ६ । ६०,३ । ७७-७६

(१) "जैसे नदी और बड़े बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक (वे) समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं। बिना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता।"

(२) "जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी (इन) तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है, इस से गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है, इसलिये (जो) मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता है वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे।"

(३) जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उस का आधा गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता, तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, और सन्यास आश्रम कहाँ से हो सकते ?"

(४) जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है।"

(स० प्र० स० ४)

नोटः—यहां पर मनु के प्रमाण को इसलिये उद्धृत किया गया है, क्योंकि महर्षि को भी मान्य है और महर्षि के जीवन चरित्र के पाठ से भी विदित होता है कि वह गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठाश्रम ही समझते थे।

(सम्पादक)

वानप्रस्थ आश्रम

वानप्रस्थ कब बने ?

(मनु० ६ । २ । ३, वा मनु० ६ । ८ । २६ का हवाला देते हुए)

(१) "जब गृहस्थ के शिर के श्वेत केश (हो जांय) और त्वचा ढीली हो जाय और लड़के का लड़का भी हो गया हो, तब (वह) बन में जाके बसे।"

(स० प्र० स० ५)

सब ग्राम के आहार आर वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़, पुत्रों के पास स्त्री को रख, वा अपने साथ लेके बन में निवास करे।"

"ब्रह्मचारी रहे, अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो, तथापि उस से विषय चेष्टा कुछ न करे।"

(स० प्र० स० ५)

(२) वान प्रस्थाश्रम करने का समय ५० वर्ष के उपरान्त है । जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे, तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, पुत्र-वधु आदि को सब गृहाश्रम की शिक्षा करके बन को ओर यात्रा की तैय्यारी करे । यदि स्त्री चले, तो साथ ले जावे, नहीं तो ज्येष्ठ पुत्र को सौंप जावे कि इसकी सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्म मार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना ।"

(संस्कार विधि० वानप्रस्थ)

स्तुति, प्रार्थना और उपासना ।

हम स्तुति, प्रार्थना और उपासना क्यों करें ?

(१)"स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभावसे अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना ।"

(२) "जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना, जैसे वह न्यायकारी है, तो आप भी न्यायकारो होवें । और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता (है) और अपने चरित्र नहीं सुधारता, (तो) उसका स्तुति करना व्यर्थ है ।"

(स० प्र० स० ७)

(३) "प्रार्थना अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञानादि प्राप्त होते हैं, उनके लिये ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है ।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

(४) "हमारे माता पिता ईश्वर के बनाये हुए पदार्थ लेकर हमें पालते हैं, तो भी वे हम पर बड़े उपकार करते हैं । इन उपकारों का स्मरण करना हमारा धर्म है, ऐसा हम स्वीकार करते हैं । फिर जब ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की तो उसके असंख्य उपकारों को हमें अवश्य स्मरण करना चाहिये ।"

"कृतज्ञता दिखलाने वालों का मन स्वतः प्रसन्न और शान्त होता है ।"

"परमेश्वर की शरण जाने से आत्मा निर्मल होता है ।"

"प्रार्थना से पश्चाताप होता है और आगे को पाप वासना का बल घटता जाता है ।"

"सत्यता प्रेम हम में दृढ़ होते जाते हैं ।"

"स्तुति अर्थात् यथार्थ वर्णन, ईश्वर (की) स्तुति करने से अपनी प्रीति बढ़ती है, क्योंकि ज्यों २ उसके गुण समझ में आते जाते हैं त्यों २ प्रीति अधिक जमती जाती है।"

"उपासना के द्वारा आत्मा में सुख का प्रादुर्भाव होता है।"

"इस उपाय को छोड़ (कर) पाप नाशन करने के लिये अन्य उपाय नहीं है।"

(पूना का व्या० २, ईश्वर विषयक)

(५) "(प्रार्थना करने से) अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना प्रार्थना का फल है।"

(आर्योद्देश्य रत्नमाला)

प्रार्थना किस प्रकार की व्यर्थ है ?

"जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है, उसको वैसा ही वर्तमान करना चाहिये, अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे। उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे, अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि जैसे "हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश (करें), मुझको सबसे बड़ा (और) मेरे ही प्रतिष्ठा और मेरे (ही) आधीन सब हो जायें", इत्यादि। क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें, तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश करदे। जो कोई (यह) कहे कि जिसका प्रेम अधिक (हो), उसकी प्रार्थना सफल हो जावे, तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो (तो) उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा "हे परमेश्वर! आप हमको रोटी बना कर खिलाइये, मेरे मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये।" इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे (पर) आलसी होकर बैठे रहते (हैं), वे महा मूर्ख हैं, क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी न पावेगा। "जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य करते हैं और आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने और नेत्र वाले को दिखलाते हैं, अन्धे को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म

में नहीं। जो कोई 'गुड़ मीठा है' ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है, उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।"

(स० प्र० स० ७)

उपासना योग का प्रथम अङ्ग क्या है ?

"जो उपासना का आरम्भ करना चाहे, उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, 'चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे, ये पाँच प्रकार के यम मिल के उपासना योग का प्रथम अङ्ग है।"

(२) "उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांगयोग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्व-व्यापी, सर्वान्तर्यामी-रूप से प्रत्यक्ष करने के लिये जो जो काम करना होता है, वह वह सब करना चाहिये।"

(स० प्र० स० ७)

उपासना की रीति कैसी हो ?

(१) जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मनको नाभि प्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा, अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर, अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवे। जब (मनुष्य) इन साधनों को करता है, तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है, नित्य प्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ा कर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।"

(स० प्र० स० ७)

(२) सदा स्त्री पुरुष १० (दश) बजे शयन और रात्रि के पहिले प्रहर वा ४ बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म अर्थ का विचार किया करें, और धर्म और अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो, तथापि धर्म-युक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिए युक्त आहार विहार, औषध-सेवन, सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्तव्य कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वर की स्तुति,

प्रार्थना, उपासना भी किया करें, कि जिस परमेश्वर की कृपा-दृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके" ॥

(संस्कार-विधि गृहस्थाश्रम)

(३) "इस प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना उपासना करनी ! तत्पश्चात् शौच, दन्त धावन, मुख प्रक्षालन करके स्नान करें। पश्चात् एक कोश वा डेढ़ कोश एकान्त जङ्गल में जाके योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना करें। सूर्योदय पर्यन्त, अथवा घड़ी, आध घड़ी दिन चढ़े तक घर में आके सन्ध्योपासनादि·········नित्य कर्म यथा विधि उचित समय में किया करें"।

(४) "जब २ मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब २ इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तर्यामी, अर्थात सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें, फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना, और उपासना को बारंबार करके अपने आत्मा को भली भाँति से उसमें लगादे ?

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

उपासना कर्म से क्या लाभ होते हैं ?

(१) "जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इस लिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये"।

(२) "आत्मा का बल इतना बढेगा (कि) वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सब को सहन कर सकेगा, क्या यह छोटी (सी) बात है ? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महा मूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रखे हैं, उस का गुण भूल जाना ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है"।

(स० प्र० स० ७)

(३) "उसके अविद्यादि क्लेशों तथा रोग रूप विघ्नों का नाश हो जाता है······दुःख की प्राप्ति, मन का दुष्ट होना, शरीर के अवयवों का कम्पना, श्वास और प्रश्वास के अत्यन्त वेग से चलने में अनेक प्रकार के क्लेशों का होना, जो कि

चित्त को विक्षिप्त कर देते हैं, ये सब क्लेश अशान्त चित्त वाले को प्राप्त होते हैं, शान्त चित्तवाले को नहीं और उन के छुड़ाने का मुख्य उपाय यही है कि जो केवल एक अद्वितीय ब्रह्म-तत्व है उसी में प्रेम और सर्वदा उसी की आज्ञा पालन में पुरुषार्थ करना है, वही एक उन विघ्नों के नाश करने को वज्र-रूप शास्त्रहै, अन्य कोई नहीं, इसलिये सब मनुष्यों को अच्छी प्रकार प्रेमभाव से परमेश्वर के उपासना-योग में नित्य पुरुषार्थ करनाचाहिये, कि जिस से वे सब विघ्न दूर होजायें"।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

चित्त की वृत्ति को रोकने का क्या प्रयोजन है ?

"जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध के रोक देते हैं, तब वह जिस ओर नीचा होता है, उस ओर चल के कहीं स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है, एक तो चित्त की वृत्ति के रोकने का यह प्रयोजन है।

और दूसरा (प्रयोजन) यह है, कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं, तब योगी की वृत्ति सदा हर्ष शोक-रहित, आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द-युक्त रहती है और संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक-रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की (वृत्ति) तो ज्ञान-रूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहतो है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फंसती (चली) जाती है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

पाँच वृत्तियों को कैसे हटायें ?

"इन पाँच वृत्तियों को बुरे कामों और अनीश्वर के ध्यान से हटाने का उपाय कहते हैं, कि जैसा अभ्यास उपासना प्रकरण में आगे लिखेंगे, वैसा करें और वैराग्य, अर्थात् सब बुरे कामों और दोषो से अलग रहें। इन दोनों उपायों से पूर्वोक्त पाँच वृत्तियों को रोक के उनको उपासना योग में प्रवृत्त रखना।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

धारणा, ध्यान और समाधि में क्या भेद है ?

"धारणा, उसको कहते हैं कि मन को चञ्चलता से छुड़ा के नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग और देशों में स्थिर कर के ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है, उस का विचार करना।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

"ध्यान, धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना, कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है, उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञानमें मग्न हो जाना, इसी का नाम ध्यान, है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

"समाधि, जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि रूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाश-मय हो के, अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश-स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं। ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला, जिस मन से जिस चीज़ का ध्यान करता है, वे तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्द-स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है, वहां तीनों का भेद भाव नहीं करता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न हो के फिर बाहर को आ जाता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, उपासना विषय)

आचार, अनाचार विचार

आचार और अनाचार के लक्षण

(१) "जो धर्म-युक्त कामों का आचरण सुशीलता, सत्पुरुषों का सङ्ग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि "आचार" (कहाता है) और इनसे विपरीत "अनाचार" कहाता है।"

(स० प्र० स० १०)

(२) "जो सत्य भाषणादि कर्मों का आचरण करना है, वही वेद और स्मृति में कहा हुआ "आचार" है।"

(स० प्र० स० १०)

डाढ़ी, मूंछ, शिखा और शिर के बाल रखें या मुंडवा देवें ?

"ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चोबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म और क्षौर मुंडन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के, अन्य डाढ़ी मूंछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये, अर्थात पुनः कभी न रखना।"

(स० प्र० स० १०)

"और जो शीत प्रधान देश हो, तो काम चार हैं, चाहे जितने केश रखे, और जो अति उष्ण देश हो, तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये, क्योंकि शिरमें बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। डाढ़ी, मूंछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है।"

(स० प्र० स० १०)

चोटी, जनेऊ

ब्राह्म समाजियों और प्रार्थना समाजियों को सम्बोधन कर के ऋषिबर लिखते हैं कि:—

और जो विद्या के चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़, मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना, यह भी व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और तमगों की इच्छा करते हो, तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था?"

(स० प्र० स० ११)

क्या यज्ञोपवीत कभी छीना भी जा सकता है ?

(१) "विद्वान्,अर्थात् ब्राह्मण लोग आर्य कुलोत्पन्न बालक के विद्या आरम्भ के समय कार्पास का अर्थात् रुई का यज्ञोपवीत विशेष चिन्ह जान (कर) धारण करने को देते थे। इसके धारण करने में बड़ी ही जवाबदारी रहती थी·········यदि (बालक) ठीक २ विद्या सम्पादन नहीं करता था, तो चाहे वह ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न हुआ हो, उसका यज्ञोपवीत छीना जाता था और उसकी अप्रतिष्ठा होती थी। इसी प्रकार शूद्र आदि भी उत्तम विद्या सम्पादन करके ब्राह्मणत्व के अधिकारी होकर यज्ञोपवीत धारण करते थे।"

(ऋषि का पूना वाला व्या० ७)

(२) "जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता, उस को शूद्र के समान समझकर द्विज कुल से अलग करके शूद्र-कुल में रख देना चाहिये ··············उसके विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये।"

(पञ्चमहायज्ञ विधि)

यज्ञ

"यज्ञ" किसे कहते हैं ?

"यज्ञ" उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथा योग्य शिल्प, अर्थात रसायन जो कि पदार्थ विद्या (है) उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों

का दान, अग्नि होत्रादि, जिन से वायु, वृष्टि, जल, औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उस को उत्तम समझता हूँ।

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

अश्वमेध, गोमेध और नरमेध यज्ञ किसे कहते हैं ?

"राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादिका दान देने हारा यजमान, और अग्नि में, घी आदि का होम करना अश्वमेध, अन्न, इन्द्रियां, किरण, (और) पृथिवी आदिको पवित्र रखना गोमेध, जब मनुष्य मर जाय, तब उसके शरीर का विधि पूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।"

(स० प्र० स० ११)

पाँच महायज्ञ कौनसे हैं ?

धर्मशास्त्र में लिखा है कि पढ़ना—ब्राह्म-यज्ञ-तर्पण-पितृ यज्ञ, होम—देव-यज्ञ, वैश्वदेव,—भूत यज्ञ और अतिथि पूजन से मनुष्य-यज्ञ कहाता (है), तथा स्वाध्याय से ऋषि-पूजन, यथाविधि होम से देव-पूजन, श्राद्धों से पितृ-पूजन, अन्नों से मनुष्य-पूजन और वैश्वदेव से प्राणि मात्र का सत्कार करना चाहिये।"

(वेद विरुद्ध मत खण्डन)

नोटः—उपर्युक्त "श्राद्ध और तर्पणशब्द की महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में इस प्रकार व्याख्याकी है:—

"अपनी स्त्री, तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्र को, तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हो उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो "तृप्त" करना, अर्थात् जिन जिन कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे, उस उस कर्म से प्रीति पूर्वक उनकी सेवा करनी वह "श्राद्ध" और "तर्पण" कहाता है।"

हमारा प्राचीन भारत

आर्य्यावर्त्त देश "स्वर्ण भूमि" कहलाता था

"यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम "सुवर्ण भूमि" है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है...... ...। जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते (हैं) और आशा रखते हैं कि (जो) पारस मणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिसके लोहे-रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

"जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, "अमेरिका" आदि देशों में फैली है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

भारत की प्राचीन सर्जरी

"एक अपूर्व बात इस समय स्मरण हुई है, (मैं) वह आपको सुनाता हूँ। एक अंग्रेजी विद्वान् डाक्टर हमको मिला। उसने मुझसे कहा कि हमारे प्राचीन आर्य लोगों में डाक्टरी औजार का कुछ भी प्रचार न था और उन्हें विदित न था। तब मैंने सुश्रुत का "नेत्र अध्याय" जिस में कि बारीक से बारीक औजार का वर्णन है निकाल कर उसे दिखलाया। तब उसको स्वास्थ्य हुई कि आर्य लोग चिकित्सा में बड़े चतुर थे और उन्हें औजारों की विद्या भी उत्तम ज्ञात थी।"

(पूना का उ० मं० व्या० १० इतिहास विषय)

दरिद्रियों के घरों में भी विमान होते थे

"उपरिचर नामक राजा था। वह सदा भूमि को स्पर्श न करता हुआ हवा ही में फिरा करता था। पहिले जो लोग लड़ाइयां करते थे, उन्हें विमान रखने की विद्या भली प्रकार विदित थी। मैंने भी एक विमान रचना की पुस्तक देखी है। भाई ! उस समय दरिद्रियों के घर में भी विमान होते थे।"

(पूना का उ० मं० ६ व्या० ५, वेद विषयक)

काशी के "मान मन्दिर" में शिशुमार चक्र

"देखो ! काशी के "मान मन्दिर" में "शिशुमार चक्र" को, कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही है, तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अब तक भी खगोल का बहुत सा वृतान्त विदित होता है।"

(स० प्र० स० ११)

एक घन्टे में साढ़े सत्ताईस कोस चलने वाला घोड़ा

"(राजा भोज के) "भोज प्रबन्ध" में लिखा है कि:—घट्यैकया क्रोशद-शैकमश्वः सुकृतिमो गच्छति चारु गत्या। वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम् ॥ राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे २ शिल्पि लोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार (का) एक यान यन्त्रकला-युक्त बनाया था कि जो एक कची घड़ी में ग्यारह कोश और एक घंटे में साढ़े सत्ताईस कोश जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था।"

स्वयं चलने वाला पङ्खा

"दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाये, कला यन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते, तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

क्या भारत में कभी जहाज़ भी चलते थे?

"समुद्र में नौकाओं पर कर लेने का विधान मनुस्मृति में दिखला कर ऋषि वर लिखते हैं:—

"जो (लोग) कहते हैं कि प्रथम जहाज़ नहीं चलते थे, वे झूठे हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ६)

"श्री कृष्ण तथा अर्जुन पाताल में अश्वतरी, अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं, उस पर बैठ के पाताल में जा के महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

राज-धर्म विषय

स्वतन्त्र स्वाधीन राजा नहीं होना चाहिये।

(१) "एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये. किन्तु राजा जो सभापति (होता है (, तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राज-सभा के अधीन रहै।"

(२) "जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे, तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें, जिस लिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त हो के प्रजा का नाशक होता है, अर्थात् वह राजा प्रजा को खाये जाता है, इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिंह वा माँसाहारी (लोग) हृष्ट पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है। अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता (है), (और) श्रीमान् को लूट खूंद अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ६)

(३) "जैसे मांसाहारी मनुष्य पुष्ट पशु को मार के उसका मांस खा जाता है, वैसे ही एक मनुष्य राजा होके प्रजा का नाश करने हारा होता है, क्योंकि वह सदा अपनी ही उन्नति चाहता रहता है।"

(वेद भाष्य भूमिका, भाष्यकरण शङ्कासमाधानादि विषय)

तीन प्रकार की सभा के आधीन सब राज्य कार्य होना चाहिये।

(एक विद्यार्य्य सभा, दूसरी धर्मार्य्य सभा, और तीसरी राजार्य्य सभा नियत करें)

"महाविद्वानों को विद्या सभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्म सभाऽधिकारी, (और) प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राज सभा के सभासद्, और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव–युक्त महान् पुरुष हों, उस को राज सभा पति रूप मान के सब प्रकार से उन्नति करे।"

"तीनों सभाओं की सम्मति से राज--नीति के उत्तम नियम, और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें, सब के हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्व--हित करने के लिये परतन्त्र और धर्म--युक्त कामों में, अर्थात् जो २ निज के काम हैं, उन २ में स्वतन्त्र रहे।"

(स० प्र० स० ६)

राजा का मन्त्री कौन हो ?

"स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रोंके जानने वाले, शूर वीर, जिन का लक्ष्य, अर्थात् विचार निष्फल न हो, और कुलीन, अच्छे प्रकार सुरक्षित, सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर "सचिवान्" अर्थात् मन्त्री करे।"

(स० प्र० स० ६)

क्या कोई राजा का अदण्ड्य भी होता है ?

(१) "(नहीं) चाहे पिता, आचार्य्य, मित्र,स्त्री, और पुरोहित (ही) क्यों न हो, (परन्तु) जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता, वह राजा का अदंड्य नहीं होता, अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ (कर) न्याय करे, तब किसी का पक्षपात न करे, किन्तु यथोचित दण्ड देवे।"

(२) "न मित्रता और न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी राजा सब प्राणियों को दुःख देने वाले साहसिक मनुष्य को बंधन छेदन किये बिना कभी छोड़े।"

(३) "चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध (हों), चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्र आदि का श्रोता (ही) क्यों न हो, (परन्तु) जो धर्म को छोड़ (और) अधर्म में वर्त्तमान (हो कर) दूसरे को बिना अपराध मारने वाले हैं, उन को बिना विचारे मार डालना (चाहिये), अर्थात् मार (डालने) के पश्चात् विचार करना चाहिये।"

(स० प्र० स० ६)

क्या संस्कृत विद्या में पूरी २ राजनीति है वा अधूरी ?

"(उत्तर) पूरी २ है, क्यों कि जो २ भूगोल में राजनीति चली और चलेगी, वह सब संस्कृत विद्या से ली है।"

(स० प्र० स० ६)

राज्य कब नष्ट होता है ?

(१) "जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं, तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं, तब (राज्य) नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।"

(स० प्र० स० ६)

(२) "इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति, और प्रमाद बढ़ता है। इस से देश में सुशिक्षा नष्ट हो कर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं और जब युद्ध विभाग में युद्ध-विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों को पक्षपात, अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब यह दोष हो जाते हैं, तब परस्पर में विरोध हो कर, अथवा उन से अधिक दूसरे छोटे कुलोंमें से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उन का पराजय करने में समर्थ होवे, जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवाजी, गोविन्दसिंह जी ने खड़े हो कर मुसलमानों के राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

(३) "जिस राज्य में मनुष्य लोग अच्छी प्रकार ईश्वर को जानते हैं, वही देश सुख-युक्त होता है।"

(वेद भाष्य भूमिका, भाष्य करण शङ्का समाधानादि विषय)

आर्यों का राज्य कैसे नष्ट हुआ ?

"अब अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है, कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है, तब देश वासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है।"

(स० प्र० स० ८)

आर्य्यावर्त्त में विदेशियों का राज्य कैसे हो गया ?

"विदेशियों के आर्य्यावर्त्त में राज्य होने का कारण (यह है) :—

(हमारी) आपस की फूट, मतभेद ब्रह्मचर्य का सेवन न करना विद्या न पढ़ना पढ़ाना, वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषया-सक्ति, मिथ्या-भाषणादि, कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं।"

"जब आपस में भाई २ लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें, जो पाँच सहस्र वर्ष के पहिले हुई थीं, उनको भी भूल गये ? देखो ! ··· ··· ··· ··· ··· आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही (फूट) रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्य्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःख सागर में डुबा मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गो-हत्यारे, स्वदेश-विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।"

(स० प्र० स० १०)

विदेशियों का उत्तम राज्य तो स्वराज्य से अच्छा है ?

"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात-शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय, दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

(स० प्र० स० ८)

राजा और प्रजा का परस्पर सम्बन्ध कैसा होना चाहिये ?

"प्रजा के धनाड्य, आरोग्य, खान पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है। प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राज-पुरुषों को जाने। यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो प्रजा न हो, तो राजा किसका ? और राजा न हो, तो प्रजा किस की कहावे। दोनों अपने २ कामों में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में परतन्त्र रहें। प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हो।"

(स० प्र० स० ६)

राजा सन्ध्योपासनादि कर्मों से विमुक्त होता है

"पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें, और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे, अर्थात यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना।"

(स० प्र० स० ६)

नोटः—राजधर्म विषय पर कहीं कहीं महर्षि दयानन्द ने मनुस्मृति के आधार पर लिखा है, परन्तु बहुधा उनके विचार अपने हैं।

सम्पादक

स्वदेश भक्ति और आर्य सभ्यता

महर्षि दयानन्द ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज की प्रशंसा करते हुए कि इन लोगों ने ईसाई मत में जाने से थोड़े बहुत मनुष्यों को बचाया, मूर्तिपूजा को भी कुछ हटाया और इसके अतिरिक्त अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दे से भी लोगों को छुड़ाया" इत्यादि, लिखते हैं कि:—

"परन्तु इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है।"

(१) "अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके स्थान में पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भर पेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ, आर्य्यावर्त्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।"

"भला जब (वे) आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया (और) अब भी खाते पीते हैं, अपने माता, पिता, (और) पितामहादि के मार्ग को छोड़ (कर) दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना.............. इंगलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है।"

(स० प्र० स० ११)

(२) "(प्रश्न) देखो ! यूरोपियन लोग मुण्डे जूते, कोट, पतलून पहरते (हैं), (और) होटल में सब के हाथ का खाते हैं, इसलिये (वे) अपनी बढ़ती करते जाते हैं।"

"(उत्तर) यह तुम्हारी भूल है, क्योंकि मुसलमान, अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं। पुनः उन की उन्नति क्यों नहीं होती ? जो यूरोपियनों में बाल्या

वस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंबर विवाह होना, बुरे २ आदमियों का उपदेश नहीं होता, वे विद्वान् हो कर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते, जो कुछ करते हैं, वह सब परस्पर विचार (कर) और सभा से निश्चित कर के करते हैं। अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन मन धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो ! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय (आफिस) और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लेओ कि अपने देश के बने जूतों का भी जितना मान प्रतिष्ठा करते हैं, उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। देखो ! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये युरोपियनों को हुए (हैं) और आज तक यह लोग मोटे कपड़े पहिरते हैं, जैसा कि (वे) सब स्वदेश में पहिरते थे, परन्तु उन्होंने अपने देश का चालचलन नहीं छोड़ा और तुममें से बहुत से लोगों ने उन का अनुकरण कर लिया। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं और जो जिस काम पर रहता है, उस को यथोचित करता है, आज्ञा वर्त्ती बराबर रहते हैं। (वे) अपने देश वालों को व्यापारादि में सहाय देते है, इत्यादि गुणों और अच्छे २ कर्मों से उन की उन्नति है। मुण्डे जूते, कोट, पतलून होटल में खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामों से (वे) नहीं बढ़े हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

(३) "जो उन्नति करना चाहो, तो "आर्यसमाज" के साथ मिलकर उस के उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना और (जिनसे) अब भी पालन होता है, (और) आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें, इसलिये जैसा 'आर्यसमाज' आर्य्यावर्त्त की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें, तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है, एक का नहीं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

(४) महर्षि दयानन्द के पत्र तिथि संवत १९३१, मिति चैत्र शुक्ल, ६ रविवार से उद्धृत जो उन्होंने मुम्बई से श्रीयुत् गोपालराव हरिदेश मुख को लिखा।

"अत्यन्त आनन्द की बात है कि आप लोगों के ध्यान में स्वदेश हित की बात निश्चित हुई है।"

"परन्तु स्वदेशादि सब मनुष्यों का निर्विघ्न हित आर्यसमाज से यथार्थ होगा।"

(पत्र, सं० १९३२, मिति चैत बदी ६ शनिवार.
श्रीयुत गोपालराव हरि देश मुख के नाम)

साकार निराकार वाद

निराकार परमेश्वर का ध्यान न हो सकने से, मूर्ति द्वारा क्यों न ध्यान किया जाय ?

"जब परमेश्वर निराकार, सर्व व्यापक है, तब उनकी पूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शन-मात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और बनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिन में अद्भुत रचना की है, क्या ऐसी रचना-युक्त पृथिवी, पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महा-मूर्त्तियाँ कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्त्तियाँ बनती हैं, उनको देख कर (क्या) परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता ?

(स० प्र० स० ११)

क्या सर्व व्यापक परमेश्वर को मूर्ति के भीतर व्यापक मान कर उपासना नहीं करनी चाहिये ?

(१) "जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है, तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना, (और) अन्यत्र न करना, यह ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ाकर एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो! यह कितना बड़ा अपमान है, वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो।"

(२) जब (परमेश्वर को) व्यापक मानते हो, तो वाटिका में से पुष्प पत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते (हो) ? चन्दन घिस के क्यों लगाते (हो) ? धूप को जला के क्यों देते (हो) ? घन्टा, घरियाल, झाँज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीसना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में (परमेश्वर) है, (फिर हाथ) क्यों जोड़ते हो ? (तुम्हारे) शिर में है, (फिर) क्यों नमाते हो ? (परमेश्वर) अन्न जलादि में है, फिर क्यों नैवेद्य धरते (हो) ? जल में है, (उसे) स्नान क्यों कराते हो ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो, वा व्याप्य की जो व्यापक को करते हो, तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और (यदि तुम) व्याप्य की (पूजा) करते हो, तो "हम ईश्वर की पूजा करते हैं" ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? "हम पाषाण के पुजारी हैं", ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?"

(स० प्र० स० ११)

ईश्वर निराकार क्यों है और साकार क्यों नहीं हो सकता ?

(१) "(ईश्वर) निराकार (है), क्योंकि जो साकार होता, तो व्यापक न होता, (और) जब व्यापक न होता, तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते, क्योंकि परिमित वस्तु में गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित रहते हैं, तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता, इस से यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो (वह) साकार हो, तो उस के नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिये, क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है, उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व (वह) निराकार था, इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता, किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।"

(स० प्र० स० ७)

(२) "जो (ईश्वर) साकार, अर्थात् शरीर-युक्त है, वही ईश्वर नहीं (हो सकता), क्योंकि वह परिमित-शक्ति-युक्त, देश, काल, वस्तुओं में परिछिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे, उसमें जीव के विना ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार, अर्थात् शरीर धारी हैं, इससे त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते हैं, वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता जो परमेश्वर भौतिक, इन्द्रिय गोलक हस्त पादापि अवयवों से रहित है, परन्तु उसकी अनन्त शक्ति, बल (और) पराक्रम है, उससे (वह) सब काम करता है, जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म (है) और उनमें व्यापक है, तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है।"

(स० प्र० स० ८)

क्या ईश्वर का अवतार भी नहीं हो सकता ?

"अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीर-धारण-रहित वेदों में कहा है, तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक अनन्त और सुख दुःख दृश्यादि गुण रहित है। वह एक छोटे से वीर्य्य गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है ? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो, और जो अचल, अदृश्य (है

और) जिसके बिना एक परिमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना, जानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है ,"

(स० प्र० स० ११)

अवतार धारण किये बिना ईश्वर अपने भक्तों का उद्धार और दुष्ट जनों का दमन कैसे कर सकता है ?

"प्रथम जो जन्मा है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति (और) प्रलय करता है, उसके सामने कंस, रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस, रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव-युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्म मरण-युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है ? और जो कोई कहे कि भक्त जनों के उद्धार करने के लिये (ईश्वर) जन्म लेता है, तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्त जन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं ? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे, तो "न भूतो न भविष्यति" ईश्वर के सदृश कोई न है (और) न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता, जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्व-व्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहाँ हो सकता है, जहाँ न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया और बाहर नहीं था, जो भीतर से निकला।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ७)

ईश्वर कैसे सर्व-शक्तिमान् है ?

(१) "(ईश्वर सर्वशक्तिमान्) है, परन्तु जैसा तुम सर्व शक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो, वैसा नहीं (है), किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम, अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य,

पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता, अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।"

(२) "......जो तुम कहो कि (ईश्वर) सब कुछ चाहता और कर सकता है, तो हम तुम से पूछते हैं कि (क्या) परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान् (हो), चोरी व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी होसकता है ? जैसे यह कर्म ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध हैं, तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है, यह कभी नहीं घट सकता, इसलिये सर्व-शक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ७)

(३) "क्या सर्व शक्तिमान् वह कहाता है कि जो असम्भव बात को भी कर सके ? जो कोई असम्भव बात, अर्थात् जैसा कारण के बिना कार्य्य को कर सकता है, तो बिना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति (भी) कर और स्वयं मृत्यु को प्राप्त (होकर) जड़, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं ? जो स्वाभाविक नियम, अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर भी नहीं कर सकता और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं, इसलिये परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिये सर्व शक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।"

(स० प्र० स० ८)

परमेश्वर निर्गुण और सगुण कैसे है ?

"जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं, वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं, इसलिये "यद् गुणैस्सह वर्त्तमानं तत्सगुणम्" "गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्," जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित, वह निर्गुण कहाता है। अपने २ स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिस में केवल निर्गुणता या केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है, वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।"

(स० प्र० स० ७)

यदि ईश्वर त्रिकाल-दर्शी है, तो जीव कैसे स्वतन्त्र रह सकता है

"ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है, क्योंकि जो होकर न रहे, वह भूतकाल, और न होके होवे, वह भविष्यत्काल, कहाता है, क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता, तथा न होके होता है, इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस अखण्डित वर्त्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये है, हां! जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव (कर्म) करता है, और जैसा ईश्वर जानता है, वैसा जीव करता है, अर्थात् भूत, भविष्यत, वर्त्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतंत्र और जीव किञ्चित् वर्त्तमान और कर्म करने में स्वतंत्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है, वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। क्या कर्म ज्ञान सच्चा और दण्ड ज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इस में कोई दोष नहीं आता।"

(स० प्र० स० ७)

परमेश्वर दयालु और न्यायकारी किस प्रकार है?

"न्याय और दया का नाम-मात्र ही भेद है, क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है, वही दया से दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हो। वही दया कहाती है जो पराये दुःखों का छुड़ाना........जैसा (जिसने) जितना बुरा कर्म किया हो, उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम न्याय है और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश हो जाय, क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देता है। जब एक को छोड़ने में सहस्रों को दुःख प्राप्त होता है। वह दया किस प्रकार हो सकती है? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना डाकू पर और उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती।"

"देखो! ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रखे हैं, इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौनसी है? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सब को सुख होने और दुख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है, वह दया और बाह्य चेष्टा, अर्थात् बन्धन छेदनादि यथावत्

दण्ड देना न्याय कहाता है । दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुःखों से पृथक् कर देना ।"

(स० प्र० स० ७)

क्या ईश्वर हमारे पाप क्षमा करता है?

(१) "जब प्रत्येक जीव का कर्मों का पूरा २ फल दिया जावेगा, तो क्षमा नहीं किया जायगा, और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा और अन्याय होगा ।"

(स० प्र० स० १४)

(२) "किये हुये पापों का क्षमा करना, जानो पापों का करने की आज्ञा दे के बढ़ाना है । पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो, वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया (हुआ) है, किन्तु पाप-वर्द्धक है । हां, आगामी पाप छुड़ाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ (और) पश्चात्ताप करना उचित है, परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे (और पाप) छोड़े नहीं, तो भी कुछ नहीं हो सकता ।"

(स० प्र० स० १४)

(३) "जो तोबा करने से पाप छूटे और ईश्वर मिले, तो कोई भी पाप करने से न डरे, इसलिये यह सब बातें विद्या से विरुद्ध हैं ।'

(स० प्र० स० १४)

(४) "यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है, तो जानो सब संसार को पापी बनाता है और दयाहीन है । क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा, और अन्य बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुँचावेगा । यदि किंचित भी अपराध क्षमा किया जावे, तो अपराध ही अपराध जगत् में छा जावे ।"

(स० प्र० स० १४)

(५) ब्रह्मसमाजियों को सम्बोधन करके महर्षि लिखते हैं:—

"एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चाताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो । इसी बात से जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं·········इस से पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत होगई है ।"

(स० प्र० स० ११)

(६) "पश्चात्ताप से पाप क्षय नहीं होता, परन्तु आगे पाप करना बन्द हो सकता है ।

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्या पूयते तु सः ॥

मनु० अ० ११ श्लो० २३०

चाहे कितना भी पश्चात्ताप किया जावे, तौ भी कृत पापों का तो भोगना ही चाहिये । इसका दृष्टान्त—जैसे कोई कुएं में गिरा और उसके हाथ पांव टूट गये, तो अब वह चाहे कितना ही पश्चात्ताप करे, तो भी उसके हाथ पाँव जो टूटे, सो तो टूट ही चुके, वह तो कुछ भी किये (से) नहीं छूट सकता । हां, आगे के लिये कुए में न गिरेगा, इतना ही केवल होगा ।"

(उ० म० पूना का व्या० जन्म विषय)

क्या ईश्वर कयामत के रोज़ ही न्याय करता है ?

(मुसलमानों के सिद्धान्त पर व्याख्या करते हुए)

(१) "जब कयामत को, अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने कराने के लिये··· ·········ख़ुदा बुलावेगा, तो जब तक प्रलय न होगा, तब तक सब दौरासुपुर्द (ही) रहेंगे और दौरा-सुपुर्द सब को दुःखदायक (होता) है, जब तक न्याय न किया जाय । इसलिये शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है । यह तो पोपांबाई का न्याय ठहरा । जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जब तक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों, तब तक उनको दण्ड वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये, वैसा ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरा-सुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया, ऐसा न्याय का काम नहीं हो सकता । न्याय तो वेद और मनुस्मृति (में) देखो जिसमें क्षण-मात्र भी विलम्ब नहीं होता, और अपने २ कर्मानुसार दण्ड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं ।"

(स० प्र० स० १४)

(२) "कयामत तक मुर्दे कबर में रहेंगे वा किसी अन्य जगह ? जो उन्हीं में रहेंगे, तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रह कर पुण्यात्मा भी दुःख भोग करेंगे ? यह न्याय, अन्याय है ।"

(स० प्र० स० १४)

(३) "क्या (मुर्दे) कबरों से निकलकर ख़ुदाको कचहरीकी ओर दौड़ेंगे ? उनके पास सम्मन कबरों में क्योंकर पहुंचेंगे ? और उन विचारों को जो कि पुण्यात्मा वा पापात्मा हैं, इतने समय सभी को कबरों में दौरे सुपुर्द क़ैद क्यों रखा ? और आज कल ख़ुदा की कचहरी बन्द होगी और ख़ुदा, तथा फ़रिश्ते वैठे होंगे ?

अथवा क्या काम करते होंगे ? अपने २ स्थानों में बैठ इधर उधर घूमते, सोते, नाच तमाशा देखते वा ऐश आराम करते होंगे। ऐसा अंधेर किसी के राज्य में न होगा।"

(स० प्र० स० १४)

ग्रन्थों की प्रमाणिकता, अप्रमाणिकता।

प्रमाण के योग्य ग्रन्थ।

"जो २ ग्रन्थ सृष्टि की आदि से लेके आज तक पक्षपात और राग द्वेष-रहित, सत्य धर्म युक्त, सब लोगों के प्रिय, प्राचीन विद्वान् आर्य्य लोगों ने (स्वतः प्रमाण) अर्थात् अपने आप ही प्रमाण, (और) परतः प्रमाण, अर्थात् वेद और प्रत्यक्षानुमानादि से प्रमाण भूत हैं.........उनको आगे कहते हैं:—

"..........ईश्वर की कही हुई जो चारों मन्त्र संहिता हैं, वे ही स्वयं प्रमाण होने योग्य हैं, अन्य नहीं। परन्तु उनसे भिन्न भी जो २ जीवों के रचे हुए ग्रन्थ हैं, वे भी वेदों के अनुकूल होने से परतः प्रमाण के योग्य होते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, ग्रन्थ प्रमाण्याप्रमाण्य)

वेद निर्भ्रम और स्वतः प्रमाण क्यों हैं ?

"क्योंकि वेद ईश्वर के रचे हुए हैं और ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वविद्या-युक्त, तथा सर्व शक्ति वाला है, इस कारण से उसका कथन ही निर्भ्रम और प्रमाण के योग्य है, और जीवों के बनाये ग्रन्थ स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं होते, क्योंकि वे (जीव) सर्व विद्या युक्त और सर्व शक्तिमान नहीं होते। इसलिये उनका कहना स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं होसकता। ऊपर के कथन से यह बात सिद्ध होती है कि वेद विषय में जहां कहीं प्रमाण की आवश्यकता हो, वहाँ सूर्य्य और दीपक के समान वेदों का ही प्रमाण लेना उचित है, अर्थात् जैसे सूर्य और दीपक अपने ही प्रकाशसे प्रकाशमान होके सब क्रिया वाले द्रव्यों को प्रकाशित कर देते हैं, वैसे ही वेद भी अपने प्रकाशसे प्रकाशितहोके अन्य ग्रंथों काभी प्रकाश करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआकि जो २ ग्रंथ वेदोंसे विरुद्ध हैं, वे कभी प्रमाण वा स्वीकार करने के योग्य नहीं होते। और वेदों का (यदि) अन्य ग्रन्थों के साथ विरोध भी हो, तब भी अप्रमाण के योग्य नहीं ठहर सकते, क्योंकि वे तो अपने ही प्रमाण से प्रमाण-युक्तहैं। इसी प्रकार ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थ जो वेदों के अर्थ और इतिहासादि से युक्त बनाये गये हैं, वे भी परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल ही होने से प्रमाण और विरुद्ध होने से अप्रमाण हो सकते हैं। मन्त्र भाग की चार संहिता कि जिनका नाम वेद है वे सब स्वतः

प्रमाण कहे जाते हैं और उनसे भिन्न ऐतरेय, शतपथ आदि प्राचीन सत्य ग्रन्थ हैं, वे परतः प्रमाण के योग्य हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रामाण्याप्रमाण्य विषय)

(२) "मैं उपनिषदों में एक "ईशावास्य" को छोड़ के अन्य उपनिषदों को वेद नहीं मानता, किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रंथों में हैं, वे ईश्वरोक्त नहीं हैं।"

(भ्रमोच्छेदन)

(३) "(मैं ब्राह्मण पुस्तकों को भी वेद नहीं मानता), क्योंकि जो ईश्वरोक्त है, वही वेद होता है। जीवोक्त को वेद नहीं कहते। जितने ब्राह्मण ग्रंथ हैं, वे सब ऋषि मुनि-प्रणीत और संहिता ईश्वर-प्रणीत है। जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने योग्य होता है, जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे (अर्थात्-जीव) सर्वज्ञ नहीं। परन्तु जो वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रंथ हैं, उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं। वेद स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं, इससे जैसे वेद विरुद्ध ब्राह्मण ग्रंथों का त्याग होता है, वैसे ब्राह्मण ग्रंथों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता, क्योंकि वेद सर्वथा सब को माननीय है।"

(भ्रमोच्छेदन)

ईश्वरीय ज्ञान वेद

वेद किन का नाम है ?

"जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं, जिन से मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उनको वेद कहते हैं।"

(आर्य्योद्देश्य रत्न माला)

सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान किन्हें और कैसे दिया गया ?

"अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा, इन चारों मनुष्यों को, जैसे वादित्र को कोई बजावे, वा काठकी पुतलीको चेष्टा करावे, इसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्त मात्र किया था।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोत्पत्ति विषय)

वेदों का "श्रुति" नाम क्यों है ?

"सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त और ब्रह्मादि से लेके हम लोग पर्यन्त जिस से सब सत्य विद्याओं को सुनते आते हैं, इससे वेदों का "श्रुति" नाम पड़ा है,

क्योंकि किसी देहधारी ने वेदों के बनाने वाले को साक्षात् कभी नहीं देखा। इस कारण से जाना गया कि वेद निराकार ईश्वर से ही उत्पन्न हुए और उनको सुनते सुनाते ही आज पर्यन्त सब लोग चले आते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोत्पत्ति विषय)

वेद कब पुस्तक रूप में आये ?

पाठक गण ! वेदों का नाम "श्रुति" भी है, कारण यह कि आदि सृष्टि से लेकर अनेक वर्षों पर्यन्त लोग "श्रवण" द्वारा ही इस ज्ञान को ग्रहण करते रहे, और उन लोगों की स्मृति इतनी तीव्र होती थी, कि सम्पूर्ण ज्ञान उन्हें सहज में याद हो जाता था। परन्तु एक समय ऐसा आया कि उनकी स्मृति धीरे २ निर्बल होती गई और वह वेदों के ज्ञान को संभाल कर सुरक्षित न रख सके। तब ऋषियों ने वेदों को पुस्तक-रूपमें परिणित कर दिया। महर्षि दयानन्द ने ता० २१ जुलाई सन् १८७१ ई० को पूना में "इतिहास" विषय पर एक व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान में महर्षि ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये:—

"इस प्रकार की मनुष्यों में गुण कर्मानुरूप व्यवस्था स्वायम्भुव मनु के समय तक पूर्णतया चलती रही। मनु के दस पुत्र थे। स्वायम्भुव मनु का बेटा मरीच यह प्रथम क्षत्रिय राजा हुआ, इसके पश्चात् हिमालय के प्रदेश में छः क्षत्रिय राजाओं की परम्परा हुई, अनन्तर इक्ष्वाकु राजा राज्य करने लगा।.........इक्ष्वाकु, यह आर्यावर्त का प्रथम राजा हुआ। इक्ष्वाकु की ब्रह्मा में छठी पीढ़ी है। पीढ़ी शब्द का अर्थ "बाप से बेटा", यही न समझें, किन्तु एक अधिकारी से दूसरा अधिकारी, ऐसा जानें। पहिला अधिकारी स्वायम्भुव था। इक्ष्वाकु के समय में लोग अक्षर स्याही आदि लिखने की रीति को प्रचार में लाये, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इक्ष्वाकु के समय में वेद को बिल्कुल कण्ठस्थ करने की रीति कुछ २ बन्द होने लगी (थी) जिस लिपि में वेद लिखे जाते थे, उसका नाम "देवनागरी" ऐसा है। कारण (यह कि) देव, अर्थात् विद्वान्, इन का जो नगर, ऐसे विद्वान् नागर लोगों ने अक्षर द्वारा अर्थ संकेत उत्पन्न करके ग्रन्थ लिखने का प्रचार प्रथम प्रारम्भ किया।"

(पूना का व्या० ८-६ इतिहास विषय)

वेदों का ज्ञान नित्य है

(१) "जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में हैं, इसी प्रकार से पूर्व कल्प में थे और आगे भी होंगे, क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है, सो नित्य एक ही रस बनी रहती है, उनके एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं

होता। सो ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की है कि इन में शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्त्तमान है, इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है, उसकी वृद्धि, क्षय, और विपरीतता कभी नहीं होती, इस कारण से वेदों को नित्य स्वरूप ही मानना चाहिये।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदानां नित्य त्वं विचार)

(२) "जब जब परमेश्वर सृष्टि को रचता है, तब २ प्रजा के हित के लिये सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है, और जब २ सृष्टि का प्रलय होता है, तब २ वेद उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं, इससे उनको सदैव नित्य मानना चाहिये।"

(३) "जो ईश्वर नित्य और सर्वज्ञ है उसके लिये वेद भी नित्य और सर्वज्ञ होने के योग्य हैं।"

क्या वेदों में इतिहास है ?

"ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं, और इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं, किन्तु विशेष जिस २ शब्द से विद्या का बोध होवे, उस २ शब्द का प्रयोग किया है, किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।"

(स० प्र० स० ७)

फिर-प्रत्येक मन्त्र के साथ "ऋषि" किस लिये लिखा होता है ?

(१) "ईश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका, तभी से प्राचीन ऋषि लोग वेद मन्त्रों के अर्थों का प्रचार करने लगे, फिर उन में से जिस २ मन्त्र का अर्थ जिस २ ऋषि ने प्रकाशित किया, उस २ का नाम उसी २ मन्त्र के साथ स्मरण के लिये लिखा गया है, इसी कारण से उनका ऋषि नाम भी हुआ है और जो उन्होंने ईश्वर के ध्यान और अनुग्रह से बड़े २ प्रयत्न के साथ वेद मन्त्रों के अर्थों को यथावत् जानकर सब मनुष्यों के लिये पूर्ण उपकार किया है, इसलिये विद्वान् लोग वेद मन्त्रों के साथ उनका स्मरण रखते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

"जिस २ मन्त्रार्थ का दर्शन जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिये अद्यावधि उस २ मन्त्र के साथ ऋषि के नाम स्मरणार्थ लिखा

आता है, जो कोई ऋषियों को मन्त्र-कर्त्ता बतलावें, उनको मिथ्यावादी समझें, वे तो मन्त्रों के अर्थ प्रकाशक है।"

(स० प्र० स० ७)

ऋषि लोगों को वेदों के अर्थ किसने और कैसे जनाये ?

"परमेश्वर ने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो (कर) परमेश्वर के स्वरूप में समाधि स्थित हुए, तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ, तब ऋषि मुनियों ने इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये, उनका नाम "ब्राह्मण" अर्थात् ब्रह्म जो वेद (है) उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ।"

(स० प्र० स० ७)

ऋषियों ने वेद मन्त्रों का प्रकाश क्यों किया ?

"वेद प्रचार की परम्परा स्थिर रहने के लिये तथा जो लोग वेद-शास्त्रादि पढ़ने को कम समर्थ हैं वे जिससे सुगमता से वेदार्थ जान लेवें, इसलिये निघण्टु और निरुक्त आदि ग्रन्थ भी बना दिये हैं कि जिनके सहायसे सब मनुष्य वेद और वेदाङ्गों को ज्ञान पूर्वक पढ़कर उनके सत्य अर्थों का प्रकाश करें।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

निघण्टु और निरुक्त किसे कहते हैं ?

"निघण्टु उसको कहते हैं कि जिसमें तुल्य अर्थ और तुल्य कर्म वाले धातुओं की व्याख्या, एक पदार्थ को अनेकार्थ तथा अनेक अर्थों का एक नाम से प्रकाश और मन्त्रों से भिन्न अर्थों का संकेत है और निरुक्त उसका नाम है कि जिसमें वेद मन्त्रों की व्याख्या है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

मन्त्रों का "देवता" क्या होता है ?

"जिन २ मन्त्रों में जिन २ पदार्थों की प्रधानता से स्तुति की है, उनको मन्त्रमय देवता जानने चाहिये, अर्थात् जिस २ मन्त्र का जो २ अर्थ होता है, वही उसका "देवता" कहाता है, सो यह इसलिये है कि जिससे मन्त्रों को देख के उनके अभिप्रायार्थ का यथार्थ ज्ञान होजाय, इत्यादि प्रयोजन के लिये देवता शब्द मन्त्र के साथ में लिखा जाता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

वेद मन्त्रों के स्वरों का ज्ञान और उच्चारण किस प्रकार होता है ?

"ऐसे ही व्याकरणादि शास्त्रों के बोध से उदात्त, अनुदात्त स्वरित, एक श्रुति, आदि स्वरों का ज्ञान और उच्चारण, तथा पिङ्गल सूत्र से छन्द और षड्जादि स्वरों का ज्ञान अवश्य करना चाहिये, जैसे "अग्निमीडे० यहां अकार के नीचे अनुदात्त का चिह्न (ग्नि) उदात्त है. इसलिये उस पर चिह्न नहीं लगाया गया है, (मी) के ऊपर स्वरित का चिह्न है। (डे) में प्रचय और एकश्रुति स्वर है, यह बात ध्यान में रखना।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रतिज्ञा विषय)

एक वेद क्यों नहीं ?

(१) "(इसके दो हेतु हैं, एक तो यह कि) भिन्न २ विद्या जनाने के लिये, अर्थात् जो तीन प्रकार की गान विद्या है (उसके जनाने के लिये वेदों का विभाग किया गया है), एक तो यह कि उदात्त और षड्जादि स्वरों का उच्चारण ऐसी शीघ्रता से करना जैसा कि ऋग्वेद के स्वरों का उच्चारण द्रुत, अर्थात् शीघ्रवृत्ति में होता है, दूसरी मध्यम वृत्ति जैसे कि यजुर्वेद के स्वरों का उच्चारण ऋग्वेद के मन्त्रों से दूने काल में होता है, तीसरी विलम्बित वृत्ति है, जिसमें प्रथम वृत्ति से तिगुना काल लगता है, जैसा कि सामवेद के स्वरों के उच्चारण वा गान में, फिर उन्हीं तीनों वृत्तियों के मिलाने से अथर्ववेद का भी उच्चारण होता है, परन्तु इसका द्रुतवृति में उच्चारण अधिक होता है इसलिये वेदों के चार विभाग हुये हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

(२) दूसरा हेतु यह है कि:—

"ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है, जिससे उनमें प्रीति बढ़ कर उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त हो सके, क्योंकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान के संस्कार और प्रवृत्ति का आरम्भ नहीं हो सकता और आरम्भ के बिना यह मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला जाता है, इसलिये ऋग्वेद की गणना प्रथम ही की है। तथा यजुर्वेद में क्रिया काण्ड का विधान लिखा है, सो ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति यथावत् हो सकती है, क्योंकि जैसा ऋग्वेद में गुणों का कथन किया है, वैसा ही यजुर्वेद में अनेक विद्याओं के ठीक २ विचार करने से संसारमें व्यवहारी पदार्थों से उपयोग सिद्ध करना होता है, जिन से लोगों को नाना प्रकार का सुख मिले। क्योंकि जब तक कोई क्रिया विधि पूर्वक न की जाय, तब तक उसका अच्छा प्रकार भेद नहीं खुल सकता इसलिये जैसा कुछ जानना वा कहना, वैसाही करना भी चाहिये, तभी ज्ञान का फल और ज्ञान की शोभा होती है। तथा यह भी जानना आवश्यक है कि जगत् का उप-

कार मुख्य करके दो ही प्रकार का होता है, एक आत्मा और दूसरा शरीर का, अर्थात् विद्या दान से आत्मा और श्रेष्ठ नियमों से उत्तम पदार्थों की प्राप्ति करके शरीर का उपकार होता है; इसलिये ईश्वर ने ऋग्वेदादि का उपदेश किया है कि जिन से मनुष्य लोग ज्ञान और क्रिया काण्ड को पूर्ण रीति से जान लेवें।"

"तथा सामवेद से ज्ञान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्व संशयों की निवृत्ति होती है, इसलिये इनके चार विभाग किये हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

पहिला ऋग्, फिर यजुः, फिर साम, और फिर अथर्व, इस क्रम से चार वेद क्यों गिने जाते हैं ?

"जब तक गुण और गुणी का ज्ञान मनुष्यों को नहीं होता, तब पर्यन्त उन में प्रीति से प्रवृति नहीं हो सकती और इसके बिना शुद्ध क्रियादि के अभाव से मनुष्यों को सुख भी नहीं हो सकता था इसलिये वेदों के चार विभाग किये हैं कि जिससे प्रवृति हो सके। क्योंकि जैसे इस गुण-ज्ञान विद्या को जनाने से पहिले ऋग्वेद की गणना योग्य है, वैसे ही पदार्थों के गुण ज्ञान के अनन्तर क्रिया रूप उपकार करके सब जगत् का अच्छी प्रकार से हित भी सिद्ध हो सके। इस विद्या के जनाने के लिये यजुर्वेद की गिनती दूसरी बार की है। ऐसे ही ज्ञान, कर्म और उपासना काण्ड की वृद्धि वा फल कितना और कहाँ तक होना चाहिये, इसका विधान सामवेद में लिखा है, इसलिये उसको तीसरा गिना है। ऐसे ही तीन वेदों में जो २ विद्या है, उन सब के शेष भाग की पूर्ति, विधान, सब विद्याओं की रक्षा और संशय निवृति के लिये अथर्ववेद को चौथा गिना है। सो गुण-ज्ञान क्रिया-विज्ञान, इनकी उन्नति तथा रक्षा को पूर्वापर क्रमसे जान लेना ? अर्थात् ज्ञानकाण्ड के लिये ऋग्वेद, क्रियाकाण्डके लिये यजुर्वेद, इनकी उन्नति के लिये सामवेद और शेष अन्य रक्षाओं के प्रकाश करने के लिये अथर्व वेद की, प्रथम, दूसरी, तीसरी और चौथी कर के संख्या बांधी है। क्योंकि (ऋच स्तुतौ) (यज्, देव पूजा, सङ्गत करणदानेषु) (षोन्तकर्मणि) और (साम सान्त्व प्रयोगे) ' थर्व तिश्चरति कर्मा) इन अर्थों के विद्यमान होने से चार वेदों, अर्थात् ऋग, यजु, साम और अथर्व की यह चार संज्ञा रखी हैं। तथा अथर्ववेद का प्रकाश ईश्वर ने इसलिये किया है कि जिससे तीनों वेदों की अनेक विद्याओं के सब विघ्नों का निवारण और उनकी गणना अच्छी प्रकार से हो सके।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

वेदों में जो अष्टक, अध्याय, मण्डल, सूक्त, षट्क, काण्ड वर्ग दशति, त्रिक और अनुवाक् रखे हैं, यह किस लिये ?

"इनका विधान इसलिये है कि जिससे पठन पाठन और मन्त्रों की गिनती बिना कठिनता से जान ली जाय, तथा सब विद्याओं के पृथक् २ प्रकरण निर्भ्रमता के साथ विदित होकर सब विद्या-व्यवहारों में गुण और गुणी के ज्ञान द्वारा मनन और पूर्वापर स्मरण होने से अनुवृत्ति पूर्वक आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्य सबको विदित हो सके, इत्यादि प्रयोजन के लिये अष्टकादि किये हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

मन्त्रों के साथ छन्द क्यों लिखा होता है ?

"जिस २ मन्त्रका जो २ छन्द है, सो भी उसके साथ इसलिये लिख दिया गया है कि उनसे मनुष्यों को छन्दों का ज्ञान भी यथावत् होता रहे। तथा कौनसा छन्द किस २ स्वर में गाना चाहिये, इस बात को जनाने के लिये उनके साथ में षड्जादि स्वर लिखे जाते हैं, जैसे गायत्री छन्द वाले मन्त्रों को षड्ज स्वर में गाना चाहिये। ऐसे ही और २ भी बता दिये हैं कि जिससे मनुष्य लोग गान विद्या में भी प्रवीण हों, इसीलिये वेद में प्रत्येक मन्त्रों के साथ उनके षड्ज आदि स्वर लिखे जाते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

भला कई २ मन्त्र चारों वेदों में क्यों आते हैं ?

"कहीं कहीं एक मन्त्र का चार वेदों में पाठ करने का यही प्रयोजन है कि वह पूर्वोक्त चारों प्रकार की गान विद्या में गाया जावे। एक कारण तो यह है और दूसरा कारण यह भी है कि प्रकरण भेद से कुछ २ अर्थभेद भी होता है, इसलिये कितने ही मन्त्रों का पाठ चारों वेदों में किया जाता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

वेदों के मन्त्र कितने प्रकार के अर्थों को जनाते हैं ?

"वेदों के सब मन्त्र तीन प्रकार के अर्थों को कहते हैं। कोई परोक्ष, अर्थात अदृश्य अर्थों को, कोई प्रत्यक्ष अर्थात दृश्य अर्थों को और कोई अध्यात्म अर्थात् ज्ञान गोचर आत्मा और परमात्मा को। उन में से परोक्ष अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में प्रथम पुरुष अर्थात् अपने और दूसरे के कहने वाले "जो, सो और वह" आदि शब्द हैं, तथा उनकी क्रियाओं के अस्ति, भवति, करोति, पचनीत्यादि प्रयोग हैं। एवं प्रत्यक्ष अर्थ के कहने वालों में मध्यम पुरुष, अर्थात् तू, तुम आदि शब्द और

उनकी क्रिया के असि, भवसि, करोसि, पचसीत्यादि प्रयोग हैं। तथा अध्यात्म अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में उत्तम पुरुष अर्थात् "मैं, हम" आदि शब्द और उनकी अस्मि, भवामि, करोमि, पचामीत्यादि क्रिया आती हैं। तथा जहाँ स्तुति करने के योग्य परोक्ष, और स्तुति करने वाले प्रत्यक्ष हों, वहाँ भी मध्यम-पुरुष का प्रयोग होता है। यहां यह अभिप्राय समझना चाहिये कि व्याकरण की रीति से प्रथम, मध्यम और उत्तम अपनी २ जगह होते हैं, अर्थात् जड़ पदार्थों में प्रथम, चेतन में मध्यम वा उत्तम होते हैं, सो यह तो लोक और वेद के शब्दों में साधारण नियम है। परन्तु वेद के प्रयोगों में इतनी विशेषता होती है कि जड़ पदार्थ भी प्रत्यक्ष हों तो वहाँ निरुक्तकार के उक्त नियम से मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है और इससे यह भी जानना अवश्य है कि ईश्वर ने संसारी जड़ पदार्थों को प्रत्यक्ष कराके केवल उनसे अनेक उपकार लेना जनाया है, दूसरा प्रयोजन नहीं है। परन्तु इस नियम को नहीं जानकर सायणाचार्य आदि वेदों के भाष्यकारों तथा उन्हीं के बनाये हुये भाष्यों के अवलम्ब से यूरोप देशवासी विद्वानों ने भी जो वेदों के अर्थों को अन्यथा कर दिया है, सो यह उनकी भूल है और इसीसे वे ऐसा लिखते हैं कि वेदों में जड़ पदार्थों की पूजा पाई जाती है, जिसका कि कहीं चिन्ह भी नहीं है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

वेदार्थ करने में विशेष नियम कौन से हैं ?

"वेदादि शास्त्रों में जो २ शब्द पढ़े जाते हैं, उन सब के बीच में यह नियम है कि जिस विभक्ति के साथ वे शब्द पढ़े हों, उसी विभक्ति से अर्थ कर लेना, यह बात नहीं है, किन्तु जिस विभक्ति से शास्त्र मूल युक्ति और प्रमाण के अनुकूल अर्थ बनता हो, उस विभक्ति का आश्रय करके अर्थ करना चाहिये, क्योंकि वेदादि शास्त्रों में शब्दों के प्रयोग इसलिये होते हैं कि उनके अर्थों को ठीक २ जान के उनसे लाभ उठावें।"

"वेदों में षष्ठी विभक्ति के स्थान में चतुर्थी होजाती है, लौकिक ग्रन्थों में नहीं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

वेदार्थ करने में विशेष नियम क्यों ?

"यह सब ऋषियों का प्रबन्ध इसलिये है कि शब्द-सागर अथाह है। इसकी थाह व्याकरण से नहीं मिल सकती। जो कहें कि ऐसा व्याकरण क्यों नहीं बनाया कि जिससे शब्द-सागर के पार पहुँच जाते, तो यह समझना कि कितने ही पोथा

बनाते और जन्म जन्मान्तरों भर पढ़ते, तो भी पार होना दुर्लभ हो जाता, इसलिये यह सब पूर्वोक्त प्रबन्ध ऋषियों ने किया है, जिससे शब्दों की व्यवस्था मालूम हो जाय।"

(ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय)

क्या वेदमन्त्रों के अनेक अर्थ हो सकते हैं ?

"इस आर्य्याभिविनय" ग्रन्थ में मुख्यता से वेद मन्त्रों का परमेश्वर सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप मे किया गया है, दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता, इससे व्यवहार विद्या सम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तार पूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ, यह दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायंगे........ और वेदो के सत्यार्थ का प्रकाश होने से वेदों का महत्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी।"

(आर्य्याभिविनय, भूमिका)

वेद संस्कृत भाषा में क्यों प्रकाशित किये गये ?

"जो किसी देश भाषा में प्रकाशित करता, तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाशित करता, उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने पढ़ाने की होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेद भाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है, उसी में वेदों का प्रकाश किया।"

(स० प्र० स० ७)

वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष होगये हैं ?

'एक वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नवसौ छहत्तर अर्थात् १९६०८५२९७६ वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति मे हो गये हैं और यह संवत सतहत्तरवां (७७) वर्त रहा है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदोत्पत्ति विषय)

देखो "इस सृष्टि की आयु कितनी है।"

(सम्पादक)

स्त्री जाति के विषय में।

पत्नि भी पूजनीया होती है।

"स्त्री का पूजनीय देव पति है और पुरुष की पूजनीया, अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।'

(स० प्र० स० ४)

उत्तम स्त्री जहां से मिले, लेलेनी चाहिये,

मनु के श्लोक २४०, अध्याय २, "स्त्रियो रत्नान्यथो०" का प्रमाण देकर महर्षि लिखते हैं कि:—

"उत्तम स्त्री, नाना प्रकार के रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रेष्ठ भाषण और नाना प्रकार की शिल्प विद्या, अर्थात् कारीगरी, सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करें।"

(स० प्र० स० ४)

क्या स्त्रियां खेती हैं ?

"जो यह (अर्थात् मुसलमानों के पुस्तकों में) स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा है और (कहा है कि) जैसा जिस तरह से चाहो, (उनके निकट) जाओ, यह मनुष्यों का विषयी करने का कारण है।"

(स० प्र० स० १४)

स्त्रियों का परदा।

"यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में कैदी के समान रहे और पुरुष खुल्ले रहें। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा।"

(स० प्र० स० १४)

क्या पूर्वकाल में स्त्रियां नाचना सीखती थीं।

"विराट राजा के नगर में रहते हुये अर्जुन ने विराट राजा की कन्या उत्तरा को नाचना सिखाया था, इससे प्रगट है कि पूर्वकाल में राजकुमारियां भी गानविद्या और नृत्य कला सीखती थीं।"

(पूना का व्या० १२, इतिहास विषय)

स्त्रियां भी यज्ञोपवीत धारण करतीं थीं।

(१) "स्त्रियों को भी विद्या सम्पादन का अधिकार पहिले (होता) था, और उसके अनुकूल उनका व्रत-बन्ध संस्कार (अर्थात् उपनयन संस्कार) पूर्वकाल में करते थे।"

(पूना का व्या० ७, यज्ञ और संस्कार विषय)

(२) "स्त्री लोग आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण करतीं थीं और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरु गृह में वास इत्यादि संस्कार होते थे।"

(पूना का व्या० ३, धर्माधर्म विषय)

(३) "द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य्य कुल, अर्थात् अपनी अपनी पाठशाला में भेजदें ।" (स० प्र० स० ३)

रजस्वला स्पर्श ।

"जो यह रजस्वला का स्पर्श संग न करना लिखा है, वहो अच्छी बात है ।" (स० प्र० स० १४)

"जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से लेके चार दिन निन्दित हैं......... अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ हुआ पानी भी न पीवे, न वह स्त्री कुछ काम करे, किन्तु एकान्त में बैठी रहे ।" (संस्कार विधि, गर्भाधान संस्कार)

विदेश यात्रा ।

क्या विदेश यात्रा से धर्म भ्रष्ट होता है ?

"(यह कहना कि आर्यावर्त्त देश से भिन्न २ देशों में जाने से धर्म और आचार भ्रष्ट हो जाता है) यह बात मिथ्या है, क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी (और) सत्य-भाषणादि आचरण करना है, वह जहां कहीं करेगा, आचार और धर्म भ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यावर्त्त में (ही) रह कर दुष्टाचार करेगा, वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा ।"

"जो आज कल छूत छात और धर्म नष्ट होने की शंका है, वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है ।"

"(सज्जन लोग) यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है । जब हम अच्छे काम करते हैं, तो हमको देश देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता, दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं ।" (स० प्र० स० १०)

विदेश जाने में आचार अनाचार का ख्याल रखना जरूरी है ।

"हां, इतना कारण तो है कि जो लोग मांस भक्षण और मद्यपान करते हैं, उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिये उनके संग करने से आर्य्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें, यह तो ठीक है, परन्तु जब इन से व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है ।"

"हां इतना अवश्य चाहिये कि मद्य मांस का ग्रहण कदापि भूल कर भी न करें ।" (स० प्र० स० १०)

विदेश में जाने के लाभ

(१) "जो मनुष्य देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं करते, वे देश देशान्तर के अनेक विध मनुष्यों के समागम, रीति भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय, (और) शूरवीर होने लगते (हैं) और अच्छे व्यवहार का ग्रहण (और) बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।"

(२) "क्या बिना देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें, तो बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।"

(स० प्र० स० १०)

क्या हमारे पूर्वज भी विदेश में जाया करते थे?

(१) (हाँ) जाया करते थे, देखो महाभारत शान्ति पर्व मोक्ष धर्म में व्यास शुक संवाद, अध्याय ३२७।

"मेरो हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्।
स देशान् विवधान् पश्यंश्चीन हूण निषेवितान्॥"

"एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय "अमेरिका" कहते हैं, उसमें निवास करते थे। शुकाचार्य्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि "(क्या) आत्म-विद्या इतनी ही है वा अधिक?" व्यास जी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया, क्योंकि उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि "हे पुत्र! तू मिथिलापुरी में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर, वह (तुझे) इसका यथायोग्य उत्तर देगा।" पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य्य पाताल से मिथिलापुरी की ओर चले। प्रथम मेरु अर्थात् हिमालय से ईशान, उत्तर और वायव्य कोण में जो देश बसते हैं, उनका नाम हरिवर्ष था, अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को, उस देश के मनुष्य अब भी रक्त-मुख अर्थात् वानर के समान भूरे नेत्र वाले होते हैं। जिन देशों का नाम इस समय "यूरोप" है, उन्हीं को संस्कृत में "हरिवर्ष" कहते थे। उन देशों को देखते हुये और जिनको "हूण", यहूदी भी कहते हैं, उन देशों को देखकर चीन में आये, चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये।"

(स० प्र० स० १०)

(२) "श्री कृष्ण तथा अर्जुन पाताल में अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नि-यान नौका कहते हैं, उस पर बैठ के पाताल में जाके महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे।"

(स० प्र० स० १०)

(३) "धृतराष्ट्र का विवाह गांधार, जिसको "कन्धार" कहते हैं, वहाँ की राजपुत्री से हुआ।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

(४) "माद्री, पाण्डु की स्त्री 'ईरान' के राजा की कन्या थी।"

(स० प्र० स० १०)

(५) "अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको "अमेरिका" कहते हैं, वहाँ के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था।"

(स० प्र० स० १०)

(६) "मनुस्मृति में जो समुद्र में जाने वाली नौका पर कर लेना लिखा है, वह भी आर्यावर्त्त से द्वीपान्तर में जाने का कारण है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

(७) "जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था, उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

(८) "जो देश देशान्तर (और) द्वीप द्वीपान्तर में न जाते होते, तो यह सब बातें क्योंकर हो सकतीं ?"

"जो (विदेश जाने में) दोष मानते होते, तो (वे) कभी न जाते।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १०)

मौजिज़े और योग सिद्धियां

क्या मौजिज़े सच्चे हैं ?

"मौजिज़े अर्थात् दैवी शक्ति की बातें सब अन्यथा हैं। भोले भाले मनुष्यों को बहकाने के लिये झूठ मूठ (बातें) चलाली हैं, क्योंकि सृष्टि क्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूठ ही होती हैं। जो उस समय "मौजिज़े" थे, तो इस समय क्यों नहीं ?"

(सत्यार्थप्रकाश स० १४)

क्या कोई देहधारी मनुष्य ईश्वर कृत नियम को बदल सकता है ?

"हम जानते हैं कि यदि कोई मरे हुये को जिला देवे, ऐसा मनुष्य न हुआ, (और) न होगा, क्योंकि ईश्वर के नियम के अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य न हुआ (और) न होगा, यह निश्चय जानना चाहिये। जैसे जीभ से ही रस का ज्ञान हो सकता है, अन्य इन्द्रिय से नहीं, यह ईश्वरकृत नियम है, इसके अन्यथा करने में जैसे किसी का सामर्थ्य नहीं है, वैसे ही ईश्वर के किये सब नियमों को जानना चाहिये।"

(वेद विरुद्ध मत खंडन)

क्या कोई योगी भी सृष्टि नियम को बदल नहीं सकता ?

"देखो ! कोई भी योगी ईश्वरकृत सृष्टि क्रम को बदलने हारा नहीं हुआ और न होगा, जैसे अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का निबन्ध किया है, इसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता, जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ८)

नोट—साधारणतः यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि योगी जो चाहे सो कर सकता है। सृष्टि नियमों को उल्लंघन करना योगी के लिये बहुत सुगम बात है, परन्तु महर्षि ने इसका समय समय पर खण्डन किया है।

(सम्पादक)

योग सिद्धि के नाम से ठगी

योग और योग सिद्धि के नाम से कई लोग भोले भाले आदमियों को ठग रहे हैं। परन्तु यह योग विद्या नहीं, बल्कि ठग विद्या है। यह लोग मन घड़न्त लीलायें दिखला कर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि हम सृष्टि नियम को बदल सकते हैं। ऋषि दयानन्द जी योग विद्या के नाम से कौतुक दिखलाने के घोर विरोधी थे। इसमें सन्देह नहीं कि महर्षि पूर्ण योगी थे। और वे असली योग विद्या अधिकारियों को सिखलाने के लिये सदैव उद्यत भी रहते थे, जैसा कि उन्होंने कई मनुष्यों को योग-क्रिया सिखलाई भी थी।

एक बार सेण्ट साहब ने स्वामी जी से कहा कि आप हमें योग की कुछ सिद्धियाँ सिखाइये, परन्तु स्वामी जी ने सर्वथा इनकार कर दिया, जैसा कि उनके निम्नलिखित पत्र से विदित होता है:—

"जो मैंने सेण्ट साहबसे कहा था, वह ठीक है, क्योंकि मैं इन इन्द्रजालकी बातों को देखना दिखाना उचित नहीं समझता, चाहे वे हाथकी चालाकी से हों (और) चाहे योग की रीति से। क्योंकि योग का अभ्यास किये बिना किसी को भी उसका महत्व वा उसमें सच्चा प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन् सन्देह और आश्चर्य में पड़कर आडम्बरी की परीक्षा और सब सुधार की बातें को छोड़ कौतुक देखने को सब चाहते हैं; और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते, जैसे सेण्ट साहब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूँ चाहे वह प्रसन्न रहें या अप्रसन्न। क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होजाऊँ, तो सब मूर्ख और पण्डित मुझसे यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग की आश्चर्य-मय सिद्धियाँ दिखलाइये, जैसे अमुक को आपने दिखलाया। ऐसी संसार की कौतुक लीला मेरे साथ भी लग जाती, जैसी मैडम एच० पी, ब्लवस्टकी के पीछे लगी हुई है। अब जो कोई इन की विद्या, वा धर्मात्मता की बातें हैं कि जिनसे मनुष्यों के आत्मा पवित्र हो आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं, उनके पूछने और ग्रहण करने से दूर रहते हैं, किन्तु जो कोई आता है वह यही कहता है कि "मैडम साहब! आप हम को भी कुछ तमाशा दिखलाइये।" इत्यादि कारणों से (मैं) इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता (और) न कराता हूँ। किन्तु कोई चाहे, तो (मैं) उसको योग रीति सिखा सकता हूँ कि जिस के अनुष्ठान करने से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो सकता है।"

(यह पत्र १४ जुलाई सन् १८८० ई० को स्वामी जी ने
करनैल आलकाट को लिखा था)

हठ योग

'आसन वही है कि जिसमें सुख से बैठ कर ईश्वर से योग हो सके। तो फिर नये लोगों का यह कहना कि यह चौरासी आसनों वाला भानमती का तमाशा ठीक है, कैसे मान लिया जावे? ... ...हठ योग में "वस्ति" उसे कहते हैं कि गुदा के रास्ते से पानी चढ़ा कर सफ़ाई करना। टकटकी लगाकर इस तरह पर देखने को जिसमें पलक न झपके, "ताटक" कहते हैं। नासिका में सूत्र डालकर मुख से निकालने को "नेति" कहते हैं। मलमल का चार अंगुल चौड़ा और १६ से लेकर ८० हाथ तक लम्बा कपड़ा मुख के रास्ते पेट में डाल कर फिर बाहर निकालने को "धोती" कहते हैं। यह बाज़ीगरी का खेल है। इनसे कब निवृत्ति पाकर योग प्राप्त कर सकते होंगे, यह हठ वाले ही जाने कि इन कामों में बीमारियाँ पैदा होती हैं।"

(उ० मं० पूना का व्या० ११, इतिहास विषय)

योग से आत्म बल किस प्रकार से बढ़ता है ?

(१) हे जगदीश्वर ! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत, वर्त्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाश रहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलकर सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान क्रिया है, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मा-युक्त रहता है, उस योग-रूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं, मेरा मन योग विज्ञान-युक्त होकर विघ्न आदि क्लेशों से पृथक् रहें।"

(२) "इत्यादिक सूत्रों से यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणा आदि तीन अङ्ग आभ्यन्तर के हैं, सो हृदय में ही योगी परमाणु पर्य्यन्त जो पदार्थ हैं, उनको योग ज्ञान से जानता है, बाहर के पदार्थों से किञ्चिन्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता, किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है, और से नहीं। इस विषय में जो कोई अन्यथा कहे, सो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें। क्योंकि जब योगी चित्तवृत्तियों को निरुद्ध करता है, बाहर और भीतर से उसी समय द्रष्टा जो आत्मा है, उस चेतन स्वरूप में ही स्थित हो जाता है, अन्यत्र नहीं।"

(प्रतिमा पूजन विचार, अर्थात् स्वामी दयानन्द जी और
पं० ताराचरण तर्क रत्न का शास्त्रार्थ
पृष्ठ१५ से १८ तक)

पुनर्जन्म ।

पुनर्जन्म का चक्र ।

(प्रश्न) मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एकसा है वा भिन्न २ जाति के ?

(उत्तर) जीव एक से हैं, परन्तु पाप पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

(प्रश्न) मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का (जीव) मनुष्य के शरीर में और स्त्री का (जीव) पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नहीं ?

(उत्तर) हां, जाता आता है, क्योंकि जब पाप बढ़ जाता (है) और पुण्य न्यून होता है, तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है, तब देव, अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता है और जब पुण्य (और) पाप बराबर होता है, तब साधारण मनुष्य (का) जन्म होता है। इसमें भी पुण्य पाप के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम,

(और) निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है, पुनः पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोग कर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ९)

"(जीव) शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है, जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर, धारण कर बाहर आता है। जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों, तो स्त्री और (जो) पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों, तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है और नपुंसक, गर्भ की स्थिति समय स्त्री पुरुष के शरीर में सम्बन्ध करके रजवीर्य्य के बराबर होने से होता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म और मुक्ति में महा-कल्प पर्य्यन्त जन्म मरण दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ९)

(२) "जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्व कृत पाप पुण्य नहीं मानते, तो किन्हीं पर नियामत, अर्थात् फज़ल वा दया करने से और किन्हीं पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जायेगा, क्योंकि बिना पाप पुण्य (के) सुख दुःख देना केवल अन्याय की बात है, और बिना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोध-दृष्टि करना भी स्वभाव से बहिः है। वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व-संचित पुण्य पाप ही नहीं (हैं), तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १४)

शरीर छोड़ कर जीव कहां जाता है ?

(१) "यमेन वायुना सत्य राजन्" इत्यादि वेद वचनों से निश्चय है कि "यम" नाम वायु का है। शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और जो सत्य कर्त्ता, पक्षपात-रहित परमात्मा "धर्म्मराज" है, वही सब का न्याय करता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

(२) "यमेन वायुना" वेद में लिखा है कि यम नाम वायु का है……… धर्म्मराज अर्थात परमेश्वर उस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देता है। वह वायु, अन्न, जल, अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य्य में जा गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ९)

पुनर्विवाह।

पुनर्विवाह कहां होना चाहिये ?

(१) "सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गत प्रत्या गतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कार मर्हति ॥ मनु ९। १७६ ॥

जिस स्त्री या पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो, और संयोग न हुआ हो, अर्थात अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष हो, उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये, किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री, (और) क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ४)

(२) विधवा विवाह का प्रचार केवल शूद्रों में था और द्विजों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों में नियोग का प्रचार था। विधवा विवाह का जो लोग विरोध करते हैं, उनकी पुष्टि करके विधवा विवाह का खंडन करने की मेरी इच्छा नहीं है। क्योंकि मैं स्वयं प्रथम तीन वर्णों के लिये विधवा विवाह को निषिद्ध समझता हूँ। परन्तु यह अवश्य कहूँगा कि ईश्वर के समीप स्त्री पुरुष दोनों बराबर हैं, क्योंकि वह न्यायकारी है और उसमें पक्षपात का लेश भी नहीं है। जब पुरुषों को पुनर्विवाह करने की आज्ञा दीजावे, तो स्त्रियों को दूसरे विवाह से क्यों रोका जावे। प्राचीन आर्य्य लोग ज्ञानी, विचारशील, और न्यायी होते थे, (परन्तु) आज कल उनकी सन्तान अनार्य्य हो गई है। चाहे कोई पुरुष कितनी ही स्त्रियाँ क्यों न कर लेवे, वहाँ देश, काल, पात्र और शास्त्र का कोई बन्धन नहीं रहा। कैसा अनर्थ है, कैसा अन्याय है, कैसा अधर्म फैल रहा है।

(उ० मं० पूना का १२ वां व्या० इतिहास विषय)

(३) "विवाह में परस्पर स्त्री पुरुष को वह प्रतिज्ञा होती है कि दोनों के मन, चित्त आदि एक होंगे और वे कभी एक दूसरे के विरुद्ध न चलेंगे। बाल्यावस्था में विवाह होने से भला लड़का लड़की इन बातों को क्या जान सकते हैं ? और ऐसे ऐसे मंत्रों का अर्थ करके कोई समझता भी नहीं है। नये पण्डित लोग कहते हैं कि केवल मन्त्र के सुनने (मात्र) से बड़ा पुण्य होता है, चाहे मन्त्र बोलने वाला इसका अर्थ समझे या न समझे। ब्राह्मण को दक्षिणा दी गई कि तत्काल धर्म सिद्ध होजाता है। वाहरे, तुम्हारा सामाजिक प्रबन्ध। आज कल का सामाजिक प्रबन्ध देखकर तो मानना पड़ता है कि इससे विधवा विवाह हर प्रकार से अच्छा है।"

(उ० मं० पूना १२ व्या० इतिहास विषय)

(४) "इस प्रकार नियोग का उस समय प्रचार था, इसलिये पुनर्विवाह की अधिक आवश्यकता ही नहीं होती थी। अब इस समय में नियोग और पुनर्विवाह दोनों के बन्द होने से आज कल के आर्य्य लोगों में जो २ भ्रष्टाचार फैला हुआ है, वह आप लोग देख ही रहे हैं। हजारों गर्भ गिराये जाते हैं। भ्रूण हत्यायें होती हैं। एक गर्भ गिराने से एक ब्रह्म हत्या का पाप होता है। सोचो कि इस देश में कितनी ब्रह्म हत्यायें प्रतिदिन होती हैं। क्या कोई उनको गणना कर सकता है ? इन सब पापों का बोझ हमारे शिर पर है। देखो ! प्राचीन सामाजिक प्रबन्ध के बिगड़ने से हमारे देश की कैसी दुर्दशा हो रही है। वेद मार्ग को एक ओर ढकेल कर पुष्टि मार्ग चमक रहा है। महन्तों और साधुओं के राजसी ठाठ लगे हुए हैं। देवालयों, मठों और मन्दिरों में पाप की भरमार होरही है। न जाने कितने गर्भ गिराये जाते होंगे ? यह पाप, दुराचार और अनर्थ का समय बन रहा है।"

(उ० मं० पूना का व्या०)

ज्योतिष-शास्त्र

"क्या ज्योतिष-शास्त्र (बिल्कुल) झूठा है ?"

(१) "नहीं, जो उससे अङ्क, बीज, (और) रेखा गणित विद्या है, वह सब सच्ची (है), (परन्तु) जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।"

(सत्यार्थ,प्रकाश स० २)

(२) "जो यह ग्रहण-रूप प्रत्यक्ष फल है, सो गणित विद्या का है, फलित का नहीं। जो गणित विद्या है, वह सच्ची और फलित विद्या स्वाभाविक सम्बन्ध जन्म को छोड़ के झूठी है।"

(३) "इसलिये कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग में कारण नहीं। भला ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर हैं, इन का सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं, कर्म्म और कर्म्म के फल का कर्त्ता भोक्ता जीव और कर्म्मों के फल भोगने हारा परमात्मा है। जो तुम ग्रहों का फल मानो, तो इसका उत्तर देओ कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है, जिसको तुम ध्रुवा त्रुटि मान कर जन्म पत्र बनाते हो, उसी समय में भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं ? जो कहो (कि) नहीं (होता), तो झूठ और जो कहो (कि) होता है, तो एक चक्रवर्त्ती के सदृश भूगोल में दूसरा चक्रवर्त्ती राजा क्यों नहीं होता।"

(सत्यार्थ प्रकाश स० ११)

(४) "जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रङ्क होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़के, लड़की का विवाह ग्रहों की गणित विद्या के अनुसार करते हैं, पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृत स्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता, तो ऐसा क्यों होता ? इसलिये कर्म की गति सच्ची, और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग में कारण नहीं।"

(सत्यार्थ प्रकाश स० ११)

क्या यह जन्मपत्री भी निष्फल है?

"हाँ, वह जन्म पत्र नहीं, किन्तु उसका नाम "शोक पत्र" रखना चाहिये। क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है, तब उसको (पिता को) आनन्द होता है, परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्म पत्र बन के ग्रहों का फल न सुनें"

(स० प्र० स० २)

क्या जन्म पत्री का प्रचार पहिले नहीं था ?

(१) "ज़रा विचार तो करो कि कहीं भी सारे महाभारत भर में जन्म पत्रिका का वर्णन आया है ? कहीं भी नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि फलित ज्योतिष की जड़ कहीं भी आर्य विद्या में नहीं हैं, यह स्पष्ट है।"

(उ० मं० पूना का व्या० ६, जन्म विषय)

(२) "जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्म पत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रंथ हैं, उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें।"

(स० प्र० स० ३)

सूक्ष्म जीव सृष्टि की हिंसा

क्या जल, स्थल, वायु और वनस्पति के स्थावर शरीर वाले जीवों को सुख दुःख का भान होता है अथवा नहीं

(१) "पीड़ा उन्हीं जीवों को पहुँचती है जिनकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो, इसमें प्रमाणः—

पञ्चावयव योगात्सुख संवित्तिः॥ सांख्य अ० ५ सू० २६

जब पाँचों इन्द्रियों का पाँचों विषयों के साथ सम्बन्ध होता है, तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है, जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्प व्याघ्रादि भय दायक जीवों का चला जाना, शून्य बहिरी वाले को स्पर्श, पिन्नस रोग वाले को गन्ध और शून्य जिह्वा वाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता, इसी

प्रकार उन जीवों की भी व्यवस्था है। देखो ! जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति दशा में रहता है, तब उसको सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है, परन्तु उसका बाहर के अवयवों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख दुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता और जैसे वैद्य वा आज कल के डाक्टर लोग नशे की वस्तु खिला वा सुंघा के रोगी पुरुष के शरीर के अवयवों को काटते वा चीरते हैं। उसको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीर वाले जीवों को सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता। जैसे मूर्छित प्राणी सुख दुःख को प्राप्त नहीं हो सकता, वैसे वे वायुकायादि के जीव भी अत्यन्त मूर्छित होने से सुख दुःख का प्राप्त नहीं हो सकते। फिर इनको पीड़ा से बचाने की बात सिद्ध कैसे हो सकती है? जब उनको सुख दुःख की प्राप्ति ही प्रत्यक्ष नहीं होती, तो अनुमानादि यहां कैसे युक्त हो सकते हैं ?

(प्रश्न) जब वह जीव हैं, तो उनको सुख दुःख क्यों नहीं होगा ?

(उत्तर) सुनो, भोले भाइयो ! जब तुम सुषुप्ति में होते हो, तब तुम को सुख दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते ? सुख दुःख की प्राप्ति का हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध है। अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंघा के डाक्टर लोग अंगों को चीरते, फाड़ते और काटते हैं। जैसे उनको दुःख विदित नहीं होता, इसी प्रकार अति-मूर्छित जीवों को सुख दुःख क्योंकर प्राप्त होवें, क्योंकि वहां प्राप्ति होने का साधन कोई भी नहीं।

(प्रश्न) देखो ! निलोति, अर्थात् जितने हरे शाक पात और कन्द मूल हैं, उनको हम लोग नहीं खाते, क्योंकि निलोति में बहुत और कन्द मूल में अनन्त जीव हैं। जो हम उनको खावें, तो उन जीवों को मारने, और पीड़ा पहुँचाने से हम लोग पापी हो जावें।

(उत्तर) "यह तुम्हारी बड़ी अविद्या की बात है, क्योंकि हरित शाक खाने में जीवों का मारना, उनको पीड़ा पहुँचनी क्योंकर मानते हो ? भला ! जब तुमको पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दीखती है और जो दीखती है, तो हमको भी दिखलाओ, तुम कभी न प्रत्यक्ष देख वा हमको दिखा सकोगे। जब प्रत्यक्ष नहीं, तो अनुमान, उपमान, और शब्द प्रमाण भी कभी नहीं घट सकता। फिर जो हम ऊपर उत्तर दे आये हैं, वह इस बात का भी उत्तर है, क्योंकि जो अत्यन्त अन्धकार महा सुषुप्ति और महा नशा में जीव हैं, इनको सुख दुःख की प्राप्ति मानना तुम्हारे तीर्थंकरों की भी भूल विदित होती है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

(२) "जलकाय जीवों को सुख दुःख प्राप्त पूर्वोक्त रीति से नहीं हो सकता, पुनः इसमें पाप किसी को नहीं होगा।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

(३) "जो तुम्हारे तीर्थंकरों का मत सच्चा होता, तो सृष्टि में इतनी वर्षा, नदियों का चलना और इतना जल क्यों उत्पन्न ईश्वर ने किया ? और सूर्य को भी उत्पन्न न करता, क्योंकि इनमें क्रोड़ाक्रोड़ जीव तुम्हारे मतानुसार मरते ही होंगे···।"

"और पूर्वोक्त प्रकार से बिना विद्यमान प्राणियों के दुःख सुख की प्राप्ति कन्द मूलादि पदार्थों में रहने वाले जीवों को नहीं होती।"

"इस थोड़े से कथन से बहुत समझ लेना कि उन जल, स्थल, वायु के स्थावर शरीर वाले अत्यन्त मूर्छित जीवों को दुःख वा सुख कभी नहीं पहुँच सकता।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

(महर्षि का यह लेख जैनियों के उत्तर में है जो कि "अहिंसापरमोधर्मः" के सिद्धान्त को मानते हुये जीव हिंसा के भय का प्रायः सर्वत्र स्वप्न देखा करते हैं।)

(सम्पादक)

क्या तालाब और बागीचा आदि बनवाने से जीव हिंसा का पाप लगता है ?

(१) जैनियों के प्रति महर्षि कहते हैं—

"तुम्हारी बुद्धि नष्ट क्यों होगई ? क्योंकि जैसे क्षुद्र २ जीवों के मरने से पाप गिनते हो, तो बड़े २ गाय आदि पशु और मनुष्यादि प्राणियों के जल पीने आदि से महा पुण्य होगा, इसको क्यों नहीं गिनते ?"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

(२) "(जो बागीचा लगाने से) माली को लक्ष पाप लगता है, तो अनेक जीव पत्र, फल, फूल और छाया से आनन्दित होते हैं, तो करोड़ों गुणा पुण्य भी होता ही है, इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया, यह कितना अन्धेर है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

आश्रम

चार आश्रमों का विभाग किसलिये किया है ?

ब्रह्मचर्याश्रम

"वह सुशिक्षा और सत्य विद्यादि गुण ग्रहण करने के लिये होता है।"

गृहाश्रम

"दूसरा गृहाश्रम जो कि उत्तम गुणों के प्रचार और श्रेष्ठ पदार्थों की उन्नति से सन्तानों की उत्पत्ति और उनको सुशिक्षित करने के लिये किया जाता है।"

वानप्रस्थाश्रम

"तीसरा वानप्रस्थ, जिससे ब्रह्म विद्यादि साक्षात् साधन करने के लिये एकान्त में परमेश्वर का सेवन किया जाता है।"

संन्यासाश्रम

"चौथा संन्यास, जो कि परमेश्वर अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति और सत्योपदेश से सब संसार के उपकार के अर्थ किया जाता है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वर्णाश्रम विषय)

वेद पढ़ने का अधिकार

मनुष्यमात्र के लिये

"मनुष्य मात्र को (वेद) पढ़ने का अधिकार है·········।"

सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र पढ़ने (और) सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के २६ अध्याय में दूसरा मन्त्र है:—

"परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ वदानि) उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो·········(ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय (आर्य्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

क्या शूद्रों के लिये पढ़ने का निषेध है

(१) "क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ?"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

(२) "जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता, तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता ? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल

अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिये प्रकाशित किये हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ३)

पिता के माल के सब पुत्र दाय-भागी हैं

"वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण वर्ण के लिये है, वैसा ही क्षत्रिय, आर्य्य, वैश्य, शूद्र, पुत्र, भृत्य, और अति शूद्र के लिये भी बराबर है, क्योंकि वेद ईश्वर-प्रकाशित है। जो विद्या का पुस्तक होता है, वह सब का हितकारक है और ईश्वर-रचित पदार्थों के दाय-भागी सब मनुष्य अवश्य होते हैं। इसलिये उसका जानना सब मनुष्यों को उचित है, क्योंकि वह माल सब के पिता का सब पुत्रों के लिये है।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, अधिकारानधिकार विषय)

भूत प्रेत

क्या भूत प्रेतों का कोई वजूद है ?

"भूत प्रेत आदि (मिथ्या बातों) का विश्वास न (करें)..............मृतक शरीर............का नाम प्रेत है............और जब उस शरीर का दाह हो चुका, तब उसका नाम भूत होता है, अर्थात वह अमुक नाम पुरुष था। जितने उत्पन्न हों, वर्त्तमान में आके न रहें, वे भूतस्थ हैं, इससे उनका नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है।"

(स० प्र० स० २)

फिर भूत प्रेत के नाम से डर क्यों लगता है ?

"जिसको शङ्का, कुसङ्ग, (और) कुसंस्कार होता है, उसी को भय और शङ्का रूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रम जाल दुःखदायक होते हैं।"

(स० प्र० स० २)

पुराण

"पुराण" किन पुस्तकों का नाम है ?

"पुराण जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा, नाराशंसी, नाम से मानता हूँ, अन्य भागवतादि को नहीं।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश)

ऋषि मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ कैसे बने, और महाभारत में किस प्रकार मिलावट होती रही ?

"राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बनाकर खड़ा किया था। उसका समाचार राजा भोज को विदित होने से उन पण्डितों को हस्त छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे, तो अपने नाम से बनावे, ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये "संजीवनी" नामक इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर के राज्य "भिण्ड" नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है, जिसको लखुना के रावसाहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आँख से देखा है।

"उस में (अर्थात् संजीवनी पुस्तक में) स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पाँच सहस्र छः सौ श्लोक-युक्त, अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिता जी के समय में पच्चीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोक-युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है, जो ऐसे ही बढ़ता चला, तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा हो जायगा और ऋषि मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे। तो आर्यावर्त्तीय लोग भ्रम जाल में पड़ के वैदिक धर्म-विहीन होके भ्रष्ट हो जायंगे।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

वर्ण व्यवस्था

वर्णाश्रम व्यवस्था

"वर्णाश्रम, गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ।"

(मन्तव्यामन्तव्य)

वर्णों में अतिविशेष कौन है ?

"(यदि) गुण कर्मों के योग्य ही से चारों वर्ण होवें, तो उस कुल, देश, और मनुष्य समुदाय की बड़ी उन्नति होवे, और जिनका जन्म जिस वर्ण में हो, उसी के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव हों, तो अतिविशेष है।"

(संस्कार विधि गृहस्थ)

श्री कृष्ण जी के विषय में ऋषि की सम्मति

महर्षि के हृदय में श्रीकृष्ण जी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और सम्मान का भाव विद्यमान था और वे उन्हें महाधार्मिक, महात्मा, आप्त पुरुष, धर्मात्मा, धर्मरक्षक, दुष्टनाशक, परोपकारी,

सत्पुरुष और श्रेष्ठ पुरुष आदि कहकर याद करते हैं। निम्नलिखित उद्धरण इस भाव को दर्शाने के लिये पर्याप्त हैं कि जैसे हीरे का मूल्य जौहरी ही जान सकता है, अन्य नहीं, इसी प्रकार योगीराज दयानन्द ही योगीराज श्रीकृष्ण जी की महिमा को जानते थे और यही कारण है कि वह श्रीकृष्ण जी का वर्णन करते समय सदैव उनका नाम बड़े आदर और सम्मान से लेते हैं।

(सम्पादक)

(१) "देखो! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिनमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।"

(स० प्र० स० ११)

क्या इससे अधिक भी कोई किसी के विषय में प्रमाण पत्र दे सकता है? इस लेख में महर्षि ने श्री कृष्ण जी को आप्त पुरुष कहा है और आप्त पुरुष कौन है, इसकी व्याख्या महर्षि अपनी पुस्तक वेदभाष्य भूमिका के "वेदानां नित्यत्व विचार:" विषय में इस प्रकार करते हैं:—

"आप्त लोग वे होते हैं, जो धर्मात्मा, कपट छलादि दोषों से रहित, सब विद्याओं से युक्त, महायोगी, और सब मनुष्यों के सुख होने के लिये सत्य का उपदेश करने वाले हैं, जिन में लेश मात्र भी पक्षपात और मिथ्याचरण नहीं होता।"

इसी प्रकार स्वमन्तव्यामन्तव्य में लिखा है कि "जो यथार्थ वक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है", उसी को "आप्त" कहता हूँ।

(२) जैन मत के पुस्तक "विवेक सार" के पृष्ठ १०६ में लिखा है कि "श्रीकृष्ण तीसरे नरक में गया" इस पर महर्षि लिखते हैं कि:—

"श्री कृष्णादि महा-धार्मिक, महात्मा, सब नरक को गये, यह कितनी बड़ी बुरी बात है?"　　　　(स० प्र० स० ११)

(३) फिर उसी के सम्बन्ध में,

"महात्मा श्री कृष्ण आदि तीसरे नरक को गये, यह कितनी मिथ्या बात है।"

(स० प्र० स० १२)

(४) "जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?"　　　　(स० प्र० स० ११)

(५) "यदा यदा हि धर्मस्य" गीता के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए और यह बतलाते हुए कि क्या श्री कृष्ण जी धर्म का लोप होने पर युग युग में शरीर धारण करते हैं? ऋषि वर लिखते हैं:—

"यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्री-कृष्ण धर्मात्मा (थे) और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग २ में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ, तो कुछ दोष नहीं, (क्योंकि) "परोपकाराय सतां विभूतयः" परोपकार के लिये (ही) सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है।"

(स० प्र० स० ७)

(६) "श्री कृष्ण जी एक भद्र पुरुष थे, उनका महाभारत में उत्तम वर्णन किया हुआ है, परन्तु भागवत में उन्हें सब प्रकार के दोष लगा कर दुर्गुणों का बाज़ार गरम कर रखा है।"

(उ० मं० पूना का व्या० ईश्वर सिद्धि विषयक)

(७) यादव कुल के विनाश के कारणों का वर्णन करते हुए ऋषिवर कहते हैं कि:—

"इस प्रकार के उपद्रव जहाँ होने लगें, वहां श्री कृष्ण जैसे श्रेष्ठ पुरुषों की बात कौन सुने ?"

(उ० मं० पूना का व्या० इतिहास विषय)

(८) "श्री कृष्ण जी तो परम पद को प्राप्त हो गये, आप लोग कैसे जीवते बने हो ?"

(वेद विरुद्ध मत खंडन)

(९) "श्रीकृष्ण जी के सदृश पराक्रम आप लोगों में क्यों नहीं दीख पड़ता ?"

(वेद विरुद्ध मत खंडन)

जीव विषय

जीव किसे कहते हैं ?

"जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुण युक्त अल्पज्ञ, नित्य है, उसी को "जीव" मानता हूँ।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

जीव का परिमाण

(प्रश्न) "जीव शरीर में भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न ?"

"(जीव शरीरमें) परिच्छिन्न (है), जो (वह) विभु होता, तो जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना, कभी नहीं हो सकता, इसलिये जीव का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प, अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्म-तर, अनन्त, सर्वज्ञ, और सब व्यापक स्वरूप है, इसलिये जीव और परमेश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है।"

(स० प्र० स० ७)

जीव और ईश्वर भिन्न हैं, अथवा अभिन्न ?

"जीव और ईश्वर, स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न है, अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा, और न कभी एक था, न है, न होगा। इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक, और पिता पुत्र आदि सम्बन्ध-युक्त मानता हूँ।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

फिर जीव ईश्वर का सम्बन्ध क्या है ?

"जीव परमेश्वर से स्थूल, और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसे यह व्याप्य व्यापक सम्बन्ध जीव ईश्वर का है, वैसे सेव्य सेवक, आधाराधेय, स्वामि भृत्य, राजा प्रजा, और पिता पुत्र आदि (का) भी सम्बन्ध है।"

(स० प्र० स० ७)

जीव ब्रह्म की एकता।

(१) महर्षि दयानन्द "जीव ब्रह्मकी एकता" के सिद्धान्तका इस प्रकारसे खंडन करते हैं :—

"सर्वशक्तिमत्व भ्रान्त्यादि दोष रहितत्वादि गुण वाले ब्रह्म का संभव जीव में कभी नहीं हो सकता, क्योंकि अल्पशक्तिमत्व, भ्रान्त्यादि दोष सहितत्वादि गुण वाला जीव है, इससे ब्रह्म जीव की एकता मानना केवल भ्रान्ति है।"

(वेदान्तिध्वान्त निवारणम्)

(२) "जो जीव ब्रह्म हो, तो जैसी ब्रह्म ने यह असंख्यात सृष्टि करी है, वैसे एक मक्खी वा मच्छर का भी जीव क्यों नहीं कर सकता ?। इससे जगत् को मिथ्या और (जीव) ब्रह्म की एकता मानना ही मिथ्या है।"

(वेदान्तिध्वान्त निवारणम्)

(३) "ब्रह्म से इतर जीव सृष्टि कर्त्ता नहीं हैं, क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ, सामर्थ्य वाले जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता, इससे जीव ब्रह्म नहीं।"

(स० प्र० स० ११)

(४) "रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति", यह उपनिषद् का वचन है। जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है। जो ऐसा न होता तो "रस, अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है,"

यह प्राप्ति विषय ब्रह्म और प्राप्त होने वाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता, इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं।"

(स० प्र० स० ११)

(५) दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः।"

(मुण्डकोपनिषद् मुं० २। खं० १ मं० २)

अर्थः—दिव्य, शुद्ध, मूर्तिमत्व-रहित, सब में पूर्ण, बाहर भीतर निरन्तर व्यापक, अज, जन्म मरण शरीर धारणादि-रहित, श्वास, प्रश्वास, शरीर और मन के सम्बन्ध से रहित, प्रकाश-स्वरूप, इत्यादि परमात्मा के विशेषण और अक्षर नाश-रहित प्रकृति से परे, अर्थात् सूक्ष्म जीव, उससे भी परमेश्वर परे, अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है।

(यहाँ) प्रकृति और जीवों से ब्रह्म का भेद प्रतिपादन-रूप हेतुओं से प्रकृति और जीवों से ब्रह्म भिन्न है।

(स० प्र० स० ११)

(६) "इसी सर्व व्यापक ब्रह्म में जीव का योग वा जीव में ब्रह्म का योग प्रतिपादन करने से जीव और ब्रह्म भिन्न हैं। क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है।"

(स० प्र० स० ११)

(७) "इस ब्रह्म के अन्तर्यामी आदि धर्म कथन किये हैं। और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्म से भिन्न है, क्योंकि व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भी भेद में संघटित होता है।"

(स० प्र० स० ११)

(८) "जैसे परमात्मा जीव से भिन्न स्वरूप है, वैसे इन्द्रिय, अंतःकरण, पृथ्वी, आदि भूत, दिशा, वायु, सूर्यादि दिव्य गुणों के भोग से देवतावाच्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है।"

(९) "गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके" इत्यादि उपनिषदों के वचनों से जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदों में बहुत ठिकाने दिखलाया है।"

(१०) "शरीरे भवः शारीरः"। शरीर धारी जीव ब्रह्म नहीं है। क्योंकि ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव जीव में नहीं घटते।"

(स० प्र० स० ११)

(११) "जीव और ब्रह्म को एक मानने से परमार्थ सब नष्ट होजाता है, क्योंकि परमेश्वर की आज्ञा पालन, स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने की प्रीति बिलकुल छूटने से केवल मिथ्याभिमान, स्वार्थसाधन तत्परता, अन्याय का करना, पाप में प्रवृत्ति, इन्द्रियों से विषयों के भोग में फँसने से अत्यन्त पामरता और पतितादि दोष-युक्त होके अपने मनुष्य जन्म धारण करने के जो कर्तव्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फल नहीं होने से, मूर्त्ति पूजनादि व्यवहारों के जैसे उस जीव का जन्म निष्फल हो जाता है, इसमे मनुष्यों को उचित है कि सद्विद्यादिक उत्तम गुणों का जगत् में प्रचार करना, व्यवहार परमार्थ की शुद्धि और उन्नति करना इत्यादि मनुष्यों को अवश्य कर्तव्य है।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम्)

जीव ब्रह्म की एकता विषय में निश्चलदास की युक्ति का खंडन।

"निश्चलदास का पाण्डित्य देखो, ऐसा है। "जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतनत्वात्" उन्होंने "वृत्तिप्रभाकर" में जीव ब्रह्म की एकता के लिये अनुमान लिखा है कि चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है। यह बहुत कम समझ पुरुष की बात के सदृश बात है, क्योंकि साधर्म्य-मात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती, वैधर्म्य भेदक होता है, जैसे कोई कहे कि पृथिवि जलाभिन्नाजड़त्वात्" जड़ के होने से पृथिवि जल से अभिन्न है। जैसा यह वाक्य सङ्गत कभी नहीं होसकता, वैसे निश्चलदास जी का भी लक्षण व्यर्थ है, क्योंकि जो अल्प अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्वादि धर्म्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत सर्वज्ञता और निर्भ्रान्तित्वादि वैधर्म्य ब्रह्म में जीव से विरुद्ध हैं। इससे ब्रह्म और जीव भिन्न २ हैं जैसे गन्धवत्त्व, कठिनत्व आदि भूमि के धर्म रसवत्त पवित्रादि जल के धर्म से विरुद्ध होने से पृथिवि और जल एक नहीं, वैसे जीव और ब्रह्मके वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे, न हैं और न कभी होंगे। इतने ही से निश्चलदासादि का समझ लीजिये कि उनमें कितना पाँडित्य था और जिसने योग वासिष्ठ बनाया है। वह कोई आधुनिक वेदान्ती था, न वाल्मीकि वसिष्ठ और रामचन्द्र का बनाया वा कहा सुना है, क्योंकि वे सब वेदानुयायी थे, वेद से विरुद्ध न बना सकते और न कह सुन सकते थे।"

(स० प्र० स० ११)

"अयमात्मा ब्रह्म" का क्या अर्थ है ?

अद्वैतवादी "अयमात्मा ब्रह्म" इस वाक्य का पेश करते हुये कहते हैं कि वेद में इस आत्मा को ब्रह्म कथन किया गया है, इससे जीव ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है। इसके उत्तर में महर्षि लिखते हैं:—

"यह (अयमात्मा ब्रह्म) अथर्व वेद का तो वाक्य नहीं है। किन्तु माण्डूक्योपनिषदादिकों का है। इसका तो स्पष्ट अर्थ है कि विचारशील पुरुष अपने अन्तर्यामी को प्रत्यक्ष ज्ञान से देख के कहता है कि "यह जो मेरा अन्तर्यामी सर्वात्मा है, यही ब्रह्म है अर्थात मेरा भी यही आत्मा है।" अपने उपास्य का प्रत्यक्षानुभव-विधायक जीव के समझने के लिये यह वाक्य है।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम्)

क्या हम अकर्त्ता और अभोक्ता हैं ?

(१) (नवीन वेदान्ती लोग स्वयं तो पाप करते हैं और कहते हैं कि "हम अकर्त्ता और अभोक्ता हैं") इसके विषय में महर्षि लिखते हैं कि—

"इस शरीर में कर्त्ता और भोक्ता जीव ही है, क्योंकि अन्य सब बुद्ध्यादिक जड़ पदार्थ जीवाधीन हैं, सो पाप और पुण्य का कर्त्ता और भोक्ता जीव से भिन्न कोई नहीं, क्योंकि वृहदारण्यकादिक उपनिषद, तथा व्यास सूत्र और वेदादिक शास्त्रों में यही सिद्धान्त है:—

"श्रोत्रेण शृणोति, चक्षुषा पश्यति, बुध्या निश्चिनोति, मनसा स कल्पयति"

इत्यादिक प्रतिपादन हैं, जैसे "असिना छिनत्ति शिरः" तरवार को लेके किसी का शिर काटता है, इसमें काटने का कर्त्ता मनुष्य ही है, काटने का साधन तरवार है, तथा शिर काटने का कर्म है, इस में पाप और दण्ड मनुष्य जो मारने वाला (है), उसको होता है, तरवार को नहीं। इसी प्रकार श्रोत्रादिकों से पाप और पुण्य का कर्त्ता तथा भोक्ता जीव ही है, अन्य नहीं।"

(२) "तयोरन्यः पिप्पलं स्वादत्ति" इसमें भी जीव सुख दुःख का भोक्ता और पाप पुण्य का कर्त्ता सिद्ध होता है। अनुभव से भी जीवात्मा ही कर्त्ता और भोक्ता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। (इन लोगों ने) केवल इन्द्रियाराम हो के विषय भोग-रूप स्वमतलब साधने के लिये यह बात बनाई है कि "जीव अकर्त्ता, अभोक्ता और पाप, पुण्य से रहित है" यह बात नवीन वेदान्ति लोगों की मिथ्या ही है।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम्)

अनादि पदार्थ

अनादि किसे कहते हैं ?

"जो न कभी उत्पन्न हुआ हो, जिसका कारण कोई भी न होवे, अर्थात् जो सदा से स्वयंसिद्ध हो, वह अनादि कहाता है।"

(आर्य्योद्देश्य रत्नमाला)

अनादि पदार्थ कितने हैं ?

(१) "अनादि पदार्थ तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति, अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

(२) "जीव, जीवों के कर्म और स्थूल कार्य जगत् ये तीनों अनादि हैं। जीव और कारण जगत् स्वरूप से अनादि हैं, कर्म और स्थूल कार्य जगत् प्रवाह से अनादि हैं।"

(ऋग्वेदादि भा० भू० वेदोत्पत्ति)

"प्रवाह से अनादि" इसका क्या मतलब है ?

(१) "प्रवाह से अनादि, जो संयोग से द्रव्य गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं. वे वियोग के पश्चात नहीं रहते, परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है, वह सामर्थ्य उन में अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा, तथा वियोग भी। इन तीनों को "प्रवाह से अनादि" मानता हूँ।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

(२) "जो कार्य जगत्, जीव के कर्म और जो इनका संयोग वियोग है, वह तीन परम्परा से अनादि हैं।"

(आर्योद्देश्य रत्न माला)

तीन पदार्थ अनादि हैं

"प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी यह जन्म लेते, अर्थात् यह तीन सब जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उसका भोग करता है।"

(स० प्र० स० ८)

(प्रश्न) जगत् के कारण कितने हैं ?

(उत्तर) तीन, एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण।

निमित्त कारण

"निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने और न बनाने से न बने, आप स्वयं बने नहीं, (और) दूसरों को प्रकारान्तर बना देवे।"

उपादान कारण

"दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तररूप होके बने और बिगड़े भी।"

साधारण कारण।

"तीसरा साधारण कारण, उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं एक सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने, तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा—दूसरा परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव। उपादान कारण प्रकृति परमाणु जिस को सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं, वह जड़होने से आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है, किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। ……जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार निमित्त, मट्टी उपादान और दण्ड चक्रादि सामान्य निमित्त दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आँख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।''

(सत्यार्थप्रकाश स० ८)

जगत् का करण प्रकृति अनादि है।

(१) (पूर्वपक्षी) ईश्वर ने कहा कि हो जा, बस वह होगया (समीक्षक) (यह बात ग़लत है) भला खुदा ने हुक्म दिया कि हो जा, तो हुक्म किसने सुना? और किसको सुनाया और कौन बन गया? किस कारण से बनाया? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय खुदा के कोई भी दूसरी वस्तु न थी, तो यह संसार कहां से आया? बिना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता, तो इतना बड़ा जगत् कारण के बिना कहाँ से हुआ? यह बात केवल लड़कपन की है।

(पूर्व पक्षी) नहीं २ खुदा की इच्छा से।

(उत्तर पक्षी) क्या तुम्हारी इच्छा से एक मक्खी की टाँग भी बन जा सकती है? जो कहते हो कि खुदा की इच्छा से यह सब कुछ जगत् बन गया।

(पूर्व पक्षी) खुदा सर्व शक्तिमान है, इसलिये जो चाहे, सो कर लेता है।

(उत्तर पक्षी) सर्व शक्तिमान का क्या अर्थ है?

(पूर्व पक्षी) जो चाहे, सो कर सके।

(उत्तर पक्षी) क्या ख़ुदा दूसरा ख़ुदा भी बना सकता है ? (क्या) अपने आप मर सकता है ? (क्या) मूर्ख, रागी और अज्ञानी भी बन सकता है ?

(पूर्व पक्षी) ऐसा कभी नहीं बन सकता।

(उत्तर पक्षी) इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे संसार में किसी वस्तु के बनने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं:—एक बनाने वाला, जैसे कुम्हार, दूसरा घड़ा बनाने वाली मिट्टी, और तीसरा उसका साधन, जिससे घड़ा बनाया जाता है, जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बनने वाले घड़े के पूर्व कुम्हार मिट्टी और साधन होते हैं, वैसे ही जगत् के बनने से पूर्व जगत् का कारण, प्रकृति और उनके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं।

(स० प्र० स० १४)

(२) "जब मुसलमान लोग ख़ुदा के सिवाय दूसरी चीज़ नहीं मानते, तो ख़ुदा ने किससे कहा ? और उसके कहने से कौन हो गया ?..........बिना उपादान कारण के कार्य्य कभी नहीं हो सकता, बिना कारण के कार्य्य कहना, जानों अपने मां बाप के बिना "मेरा शरीर होगया, ऐसी बात है।"

(३) ख़ुदा के सिवाय उस समय कौन था, जिसको आज्ञा दी ? किसने सुना ? और कौन बन गया ? यदि न थी, तो यह बात झूठी, और जो थी, तो वह बात जो "सिवाय ख़ुदा के कुछ चीज नहीं थी और ख़ुदा ने सब कुछ बना दिया", वह झूठी (है)।

(सत्यार्थप्रकाश स० १४)

(४) "क्या ईश्वर की (यह) बात (कि उजियाला हो जा) जड़ रूप उजियाले ने सुन ली ? जो सुनी हो, तो इस समय भी सूर्य्य, दीप (और) अग्नि का प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता ? प्रकाश जड़ होता है, वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता। क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा, तभी जाना कि उजियाला अच्छा है ? पहिले नहीं जानता था, जो जानता होता, तो देख कर अच्छा क्यों कहता ? जो नहीं जानता था, तो वह ईश्वर ही नहीं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १३)

(५) "यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया, तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञान स्वरूप, आनन्द-मय आदि लक्षण युक्त है, (फिर) उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ ? जो नहीं हुआ, तो उसके स्वरूप में नहीं बना और आदम

को उत्पन्न किया, तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पत्ति वाला किया, पुनः वह अनित्य क्यों नहीं ? और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया ?

(ईसाई) मट्टी से बनाया ।

(समीक्षक) मट्टी कहाँ से बनाई ?

(ईसाई) अपनी कुदरत, अर्थात् सामर्थ्य से ।

(समीक्षक) ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है वा नवीन ?

(ईसाई) अनादि है ।

(समीक्षक) जब अनादि है, तो जगत् का कारण सनातन हुआ । (फिर) अभाव से भाव क्यों मानते हो ?

(ईसाई) सृष्टि के पूर्व ईश्वर के बिना कोई वस्तु नहीं थी ।

(समीक्षक) जो नहीं थी, तो यह जगत् कहां से बना ? और ईश्वर का सामर्थ्य द्रव्य है वा गुण ? जो द्रव्य है, तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था और जो गुण है, तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता, जैसे रूप से अग्नि और रस से जल नहीं बन सकता और जो ईश्वर से जगत् बना होता, तो ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव वाला होता । उसके गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से नहीं बना, किन्तु जगत् के कारण अर्थात् परमाणु आदि नाम वाले जड़ से बना है ।"

(स० प्र० स० १३)

(६) "जब ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो ईश्वर का स्वरूप नहीं हुआ, और जो है तो ईश्वर भी धूली से बना होगा ? जब उसके नथुनों में ईश्वर ने श्वास फूंका, तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था वा भिन्न ? जो भिन्न था, तो ईश्वर आदम के स्वरूप में नहीं बना । जो एक है, तो आदम और ईश्वर एक से हुए, और जो एक से हैं, तो आदम के सदृश जन्म, मरण, वृद्धि, क्षय, क्षुधा, तृषा आदि दोष ईश्वर में आये, फिर वह ईश्वर क्यों कर हो सकता है ?"

(स० प्र० स० १३)

(७) "जो ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया, तो उसकी स्त्री को धूली से क्यों नहीं बनाया ? और जो नारी को हड्डी से बनाया, तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया ?..............जो आदम की एक पसली निकाल कर नारी बनाई, तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती ? और स्त्री के शरीर में

एक पसली होनी चाहिये, क्योंकि वह एक पसली से बनी है। क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया, उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था ?"

(स० प्र० स० १३)

(८) "नूर कहते हैं प्रकाश को। उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता, परन्तु वह नूर मूर्त्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध दिखला सकता है और वह प्रकाश करने वाले पदार्थ के बिना अलग नहीं रह सकता। इससे जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है, उसको माने बिना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता।"

(सत्यधर्म विचार)

सृष्टि

सृष्टि किसे कहते हैं ?

(१) "जो कर्त्ता की रचना से कारण द्रव्य किसी संयोग विशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर वर्त्तमानमें व्यवहार करने योग्य होती है वह सृष्टि कहाती है।"

(आर्योद्देश्य रत्नमाला)

(२) "सृष्टि उसको कहते हैं (कि) जो पृथक द्रव्यों का ज्ञान, युक्ति-पूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

मैथुनी अमैथुनी सृष्टि कब होती है ?

"आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती, क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है, तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।"

(स० प्र० स० ८)

आदि सृष्टि विषयक प्रश्नोत्तर

(प्रश्न) "मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या पृथिवी आदि की ?

(उत्तर) पृथिवी आदि की, क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ?

(उत्तर) अनेक, क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे, उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता (है) क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये, ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न

हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक माँ बाप के सन्तान हैं।

(प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्यादि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी, अथवा तीनों में ?

(उत्तर) युवावस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता, तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते, और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती, इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

(प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ (भी) है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं, जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन, तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि, तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त नहीं, किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, जैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और वर्तमान प्रवाह से अनादि है, जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता (है), कभी नहीं दीखता फिर बरसात में दीखता और उष्ण काल में नहीं दीखता ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिये, जैसे परमेश्वरके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं, वैसेही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि है जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं, इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य कर्मों का भी आरंभ और अन्त नहीं।

(स० प्र० स० ८)

(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ?

(उत्तर) त्रिविष्टप् अर्थात् जिसको "तिब्बत" कहते हैं।

(स० प्र० स० ८)

"यथा पूर्वमकल्पयत ही ठीक है"

(१) यदि ईश्वर ने "यथा पूर्व" जगत् उत्पन्न नहीं किया ऐसा कहें तो क्या नवीन जगत् उत्पन्न करते समय उसने पुरानी भूलों को सुधारा है ? अथवा जो (बातें) उसे (पहिले) विदित न थीं, क्या ऐसी बातों को उस में डाला है ? कभी नहीं, इस स्थल पर तर्क का अप्रतिष्ठान उत्पन्न होता है और अनवस्था प्रसंग भी आता है

और फिर ईश्वर की सर्वज्ञता में दोष आकर पूर्वानवस्था उत्तरानवस्था का प्रसंग आता है।"

(पूना का व्या० ८ इतिहास विषय)

(२) "यदि अल्लाह दो बार उत्पत्ति करता है, तीसरी बार नहीं, तो उत्पत्ति की आदि और दूसरी बार के अन्त में निकम्मा बैठा रहता होगा ? और एक तथा दो बार उत्पत्ति के पश्चात् उसका सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ हो जायगा।"

(स० प्र० स० १४)

इस सृष्टि की आयु कितनी है ?

(१) हजार चतुर्युगियों का एक ब्राह्म दिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्मरात्रि होती है, अर्थात् जगत् की उत्पत्ति हो के जब तक कि वर्तमान होता है, उस का नाम ब्राह्म दिन है और प्रलय होके जब तक हज़ार चतुर्युगी पर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती, उसका नाम ब्राह्म-रात्रि है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है। सो इस समय सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर वर्त्तमान हो रहा है और इससे पहिले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं :—

स्वायम्भुव, स्वरोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत, और चाक्षुष, अर्थात् १९६०८५२९७६ वर्षों का भोग हो चुका है और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं।

(सत्यधर्म विचार)

(२) देखो "वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष होगये हैं।"

नोटः—महर्षि के उपर्युक्त हिसाब से सृष्टि की कुल आयु ४२९४०८०००० वर्ष होती है और यही संख्या १४ मन्वन्तरों के योग से ठीक २ निकलती है, परन्तु इस योग में १५ संधियों के २५९२०००० वर्ष नहीं जोड़े गये, जिनके जोड़ने से सृष्टि की आयु के ४३२०००००००० वर्ष होते हैं और इसका नाम कल्प है। इतनी सृष्टि की आयु है और इतनी ही प्रलय काल की संज्ञा है। सूर्य सिद्धांत को बने हुए कम से कम २१६५००० वर्ष से अधिक बीत गये हैं और इसी सूर्य सिद्धान्त के अध्याय १, श्लोक १८-१९ में लिखा है कि एकहत्तर युग का एक मन्वन्तर होता है जिसके अन्त में कृतयुग (सत्ययुग) के बराबर (अर्थात् १७२८००० वर्ष) १ सन्धि काल होता है। कल्प में सन्धि के साथ १४ मनु होते हैं। कल्प की आदि में कृतयुग प्रमाण की एक सन्धि होती है अर्थात् एक कल्प में १४ मनु और १५ सन्धियां होती हैं। महर्षि से इन १५ सन्धियों का समय जोड़ना रह गया है।

—सम्पादक

जगत् के बनाने में ईश्वर का क्या प्रयोजन है ?

(१) "जो तुम से कोई पूछे कि आंख के होने में क्या प्रयोजन है ? तुम यही कहोगे (कि) "देखना"। तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल, और क्रिया है, उसका क्या प्रयोजन बिना जगत् की उत्पत्ति करने के ?............ ......परमात्मा के न्याय, धारण, दया, आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं, जब (वह) जगत् को बनावे। उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है, वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके, सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।"

(सत्यार्थ प्रकाश स० ८)

(२) "सृष्टि का प्रयोजन यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण, कर्म स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि "नेत्र किस लिये हैं ?", उसने कहा "देखने के लिये"। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है, और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

(३) "जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि और जीव के कर्म, तथा कार्य जगत् का नित्य प्रवाह से अनादि हैं। जब प्रलय होता है, तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं, तो उनके भोग कराने के लिये और फल देने के लिये ईश्वर सृष्टि को रचता है और अपने पक्षपात-रहित न्याय को प्रकाशित करता है। ईश्वर में जो ज्ञान, बल, दया आदि और रचने की अत्यन्त शक्ति है, उनके सफल करने के लिये उसने सृष्टि रची है। जैसे आँख देखने के लिये और कान सुनने के लिये हैं, वैसे ही रचना-शक्ति रचने के लिये है। सो अपनी सामर्थ्य की सफलता करने के लिये ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें। धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की सिद्धि के लिये जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं।"

(सत्यधर्म विचार)

क्या जगत् मिथ्या है ?

(१) "जगत् को मिथ्या मानने में जगत् की उन्नति, परस्पर प्रीति, और विद्यादि गुणों की प्राप्ति करने में पुरुषार्थ, और श्रद्धा अत्यन्त नष्ट होने से जगत् के जितने उत्तम कार्य्य हैं, वे सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम्)

(२) "(नवीन वेदान्ती लोग) जगत् को मिथ्या, (और) कल्पित कहते हैं और मानते हैं, सो इनका केवल अविद्यान्धकार का महात्म्य है"—

"सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः"

यह छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है। (अर्थ) जिसका मूल सत्य है, उसका वृक्ष मिथ्या कैसे होगा ? तथा जो परमात्मा का सामर्थ्य जगत् का कारण है, सो नित्य है, क्योंकि परमात्मा नित्य है तो उसका सामर्थ्य भी नित्य ही है, उसी से यह जगत् हुआ है सो वह मिथ्या किसी प्रकार से नहीं होता।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम्)

जगत् मिथ्या मानने वालों के प्रश्नों का समाधान

(प्रश्न) "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानोऽपि तथा"

जो आदि और अन्त में नहीं है, वह वर्तमान काल में भी नहीं है, अतः जगत् मिथ्या है।

(उत्तर) "यह बात अयुक्त है, क्योंकि जो पूर्व नहीं है, सो फिर नहीं आ सकता। जिस कूप में जल नहीं है उससे पात्र में जल नहीं आता, इसलिये ऐसा जानना चाहिये कि ईश्वर के सामर्थ्य में, अथवा सामर्थ्य-रूप जगत् पूर्व था, सो इस समय है और आगे भी रहेगा।"

(प्रश्न) "संयोग जन्य पदार्थ संयोग से पूर्व नहीं हो सकता, वियोगान्त में नहीं रहता, सो वर्त्तमान में भी नहीं सा जानना चाहिये।"

(उत्तर) "विद्यमान् सत् पदार्थों का ही संयोग होता है। जो पदार्थ नहीं हो, उनका संयोग भी नहीं होता इसमे वियोग के अन्त में भी पृथक् २ वे पदार्थ सदैव रहते हैं। (चाहे) कितना ही वियोग हो, तो भी अन्त में अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ रह ही जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। इतना कोई कह सकता है कि संयोग और वियोग तो अनित्य हुआ, सो भी मान्य करने के योग्य नहीं, क्योंकि जैसे वर्त्तमान में संयुक्त पदार्थ होके पृथिव्यादि जगत् बना है, सो पदार्थों के मिलने के स्वभाव के बिना कभी नहीं मिल सकते, तथा वियोग होने के बिना वियुक्त न हो सकने, सो मिलना और पृथक् होना, यह पदार्थों का गुण ही है। जैसे मिट्टी में मिलने का गुण होने से घटादि पदार्थ बनते हैं, बालुका से नहीं, सो मिट्टी में मिलने और अलग होने का गुण ही है, सो गुणसहज स्वभाव से है, वैसे ईश्वर का सामर्थ्य जिससे यह जगत् बना है, उसमें संयोग और वियोगात्मक गुण सहज स्वाभाविक हैं। इससे निश्चित हुआ कि जगत् का कारण जो ईश्वर का सामर्थ्य (है), सो नित्य है तो उसके वियोग आदि

गुण भी नित्य हैं, इससे जो जगत् को मिथ्या कहते हैं, उनका कहना और सिद्धान्त मिथ्याभूत है, ऐसा निश्चित जानना।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम्)

नवीन वेदान्तियों के प्रश्नों का उत्तर

"(तुम जगत् को मिथ्या इसलिये कहते हो कि जो वस्तु न हो, और (वह) प्रतीत होवे, वही मिथ्या है, और जगत् को तुम स्वप्नवत्, रज्जू में सर्प, सीप में चांदी, मृगतृष्णा में जल, गन्धर्व नगर, इन्द्र जाल वत्, यह संसार मानते हो") तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मान कर इस भ्रमजाल में पड़े हो। क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो कहो कि रज्जू में नहीं, तो देशान्तर में और उसका संस्कार मात्र हृदय में है, फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा। वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चांदी आदि की व्यवस्था समझ लेना और स्वप्न में भो जिनका भान होताहै, वे देशान्तर में हैं और उनके संस्कार आत्मा में भी हैं, इसलिये वह स्वप्न भो वस्तु में अवस्तु के आरोपण के समान नहीं।"

(सिद्धान्ति) ब्रह्म में जगत् का भान किस को हुआ ?

(नवीन) जीव को

(सि०) जीव कहां से हुआ ?

(न०) अज्ञान से

(सि०) अज्ञान कहां से हुआ और कहां रहता है ?

(न०) अज्ञान अनादि (है) और ब्रह्म में रहता है।

(सि०) ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का, और वह अज्ञान किस को हुआ ?

(न०) चिदाभास का

(सि०) चिदाभास का स्वरूप क्या है ?

(न०) ब्रह्म, ब्रह्म का ब्रह्म का अज्ञान. अर्थात अपने स्वरूप को आप ही आप भूल जाता है।

(सि०) उसके भूलने में निमित्त क्या है ?

(न०) अविद्या

(सि०) अविद्या सर्व-व्यापी सर्वज्ञ का गुण है वा अल्पज्ञ का ?

(न०) अल्पज्ञ का

(देखो अगला पृष्ठ)

(सि०) तो तुम्हारे मत में बिना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहां से आया ? हां, जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो, तो ठीक है। जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान हो, तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय, जैसे शरीर में फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मे कर देती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एक देश में अज्ञानी और क्लेश-युक्त हो, तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभव-युक्त हो जाय।

(न०) जैसे जलके सहस्र कूंडे धरे हों, उनमें सूर्य के सहस्र प्रतिबिम्ब दीखते हैं। वस्तुतः सूर्य एक है। कूंडा के नष्ट होने से, जल के चलने वा फैलने से सूर्य न नष्ट होता, न चलता और न फैलता है, इसी प्रकार अन्तःकरणों में ब्रह्म का आभास जिसको चिदाभास कहते हैं, पड़ा है। जब तक अन्तः करण है, तभी तक जीव है। जब अन्तः करण ज्ञान से नष्ट होता है, तब जीव ब्रह्म स्वरूप है।

(सि०) यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यर्थ है, क्योंकि सूर्य आकार वाला, जल कूंडे भी साकार है। सूर्य्य जल कूंडे से भिन्न और सूर्य्य से जल कूंडे भिन्न हैं, तभी प्रतिबिम्ब पड़ता है। यदि निराकार होते, तो उनका प्रतिबिम्ब कभी न होता और जैसे परमेश्वर निराकार, सर्वत्र आकाश-वत् व्यापक होने से ब्रह्म से कोई पदार्थ वा पदार्थों से ब्रह्म पृथक् नहीं हो सकता और व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से एक भी नहीं हो सकता, अर्थात् अन्वय व्यतिरेक भाव से देखने से व्याप्य व्यापक मिले हुए और सदा पृथक् रहते हैं, जो एक हो, तो अपने में व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता।

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

मुक्ति, अर्थात् मोक्ष।

मुक्ति किसे कहते हैं ?

"मुक्ति, अर्थात् सब दुःखों से छूट कर बन्ध रहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य)

मुक्ति से वापस लौटने में वेद का प्रमाण।

"कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्यनाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥

ऋ० । मं० १ । सू० २४ । मं० १ । २ ।

(२) इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ ३ ॥ साख्य० अ० १ । सू० १५६ ।

(प्रश्न) हम लोग किसका नाम पवित्र जानें ?, कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाश स्वरूप है ?, हमको (कौन) मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता पिता का दर्शन कराता है ? ॥ १ ॥

(उत्तर) हम इस स्वप्रकाश स्वरूप, अनादि, सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें, जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथ्वी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है, वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता (है), (और) सब का स्वामी है ॥ २ ॥ जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं । अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्ति का कभी नहीं होता, किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती ।

(सत्यार्थप्रकाश स० ६)

तर्क द्वारा पुनरावृत्ति की सिद्धि ।

(१) (प्रश्न) बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है वा निमित्त से ?

(उत्तर) निमित्त से, क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती ।"

"(प्रश्न) जीव मुक्तिको प्राप्त हो कर पुनः जन्म मरण-रूप दुःख में कभी आते हैं वा नहीं ?"

(उत्तर) आते हैं ।

"(प्रश्न) सब संसार और ग्रन्थकारों का यही मत है कि जिससे पुनः जन्म मरण में कभी न आवें ।

(उत्तर) यह बात कभी नहीं हो सकती, क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं, पुनः उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है, अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य कर्म, और साधन जीवों में नहीं, इस लिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते । जिनके साधन अनित्य हैं, उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता और जो मुक्ति में से कोई भी लौट कर जीव इस संसार में न आवे, तो संसार का उच्छेद, अर्थात जीव निश्शेष हो जाने चाहियें ।"........."जो ईश्वर अन्त वाले कर्मों का अनन्त फल देवे, तो उसका न्याय नष्ट हो जाय । जो

जितना भार उठा सके, उतना उस पर धरना बुद्धिमानों का काम है, जैसे एक मन भर (भार) उठाने वाले के शिर पर दश मन धरने से भार धरने वाले की निन्दा होती है, वैसे अल्पज्ञ, अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वर के लिये ठीक नहीं.........।"

(प्रश्न) जैसे परमेश्वर नित्य मुक्त (और) पूर्ण सुखी है, वैसे ही जीव भी नित्य मुक्त और सुखी रहेगा, तो कोई भी दोष नहीं आवेगा।

(उत्तर) परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभाव वाला है, इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन में नहीं गिर सकता, (परन्तु) जीव मुक्त होकर भी शुद्ध स्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण कर्म स्वभाव वाला रहता है, (वह) परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।

(स० प्र० स० ६)

(२) (प्रश्न) जैसे धान्य का छिलका उतारने वा अग्नि के संयोग होने से वह बीज पुनः नहीं उगता, इसी प्रकार मुक्ति में गया हुआ जीव पुनः जन्म मरण रूप संसार में नहीं आता।

(उत्तर) जीव और कर्म का सम्बन्ध छिलके और बीज के समान नहीं है, किन्तु इनका समवाय सम्बन्ध है, इस से अनादि काल से जीव और उसमें कर्म और कर्तृत्व शक्ति का सम्बन्ध है जो उसमें कर्म करने की शक्ति का भी अभाव मानोगे, तो सब जीव पाषाणवत् हो जाएँगे और मुक्ति को भोगने का भी सामर्थ्य नहीं रहेगा, जैसे अनादि कालका कर्म बन्धन छूटकर जीव मुक्त होता है, तो तुम्हारी नित्य मुक्ति से भी छूट कर बन्धन में पड़ेगा, क्योंकि जैसे कर्म रूप मुक्ति के साधनों से भी छूट के जीव का मुक्त होना मानते हो, वैसे ही नित्य मुक्ति से भी छूट के बन्धन में पड़ेगा। साधनों से सिद्ध हुआ पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता, और जो साधन सिद्ध के विना मुक्ति मानोगे, तो कर्मों के बिना ही बन्ध प्राप्त हो सकेगा। जैसे वस्त्रों में मैल लगता और धोने से छूट जाता है, पुनः मैल लग जाता है, वैसे मिथ्यात्वादि हेतुओं से राग द्वेषादि के आश्रय से जीव को कर्म रूप फल लगता है और जो सम्यक् ज्ञान दर्शन और चारित्र से निर्मल होता है और मल लगने के कारणों से मलों का लगना मानने हो, तो मुक्त जीव संसारी और संसारी जीव का मुक्त होना अवश्य मानना पड़ेगा। क्योंकि जैसे निमित्तों से मलिनता छूटती है वैसे निमित्तों से मलिनता लग भी जायेगी, इसलिये जीव को बन्ध और मुक्ति प्रवाह रूप से अनादि मानो, अनादि अनन्तता से नहीं।

(प्रश्न) जीव निर्मल कभी नहीं था, किन्तु मल सहित है।

(उत्तर) जो कभी निर्मल नहीं था तो निर्मल भी कभी नहीं हो सकेगा, जैसे शुद्ध वस्त्र में पीछे से लगे हुये मैल को धोने से छुड़ा देते हैं उसके स्वाभाविक श्वेत वर्ण को नहीं छुड़ा सकते, मैल फिर भी वस्त्र में लग जाता है, इसी प्रकार मुक्ति में भी लगेगा।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १२)

मुक्त जीव कितने समय तक मुक्ति में रहता है ?

"वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महा कल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के ससार में आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तेतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का एक परान्तकाल होता है। इस को गणित की रीति से यथावत् समझ लीजिये, इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ६)

नोट—गणित की रीति इस प्रकार है:—

४३,२०,००० = एक चतुर्युगी

४३,२०,००० × २००० = ८,६४,००००००० = एक अहोरात्र

८६४००००००० × ३० = २५९२०००००००० = एक महीना

२५९२०००००००० × १२ = ३११०४०००००००० = एक वर्ष

३११०४०००००००० × १०० = ३११०४०००००००००० = परान्तकाल

इतने वर्षों तक जीव मुक्ति में रहता है।

(सम्पादक)

जब मुक्ति से वापस ही लौटना पड़ता है, तो मुक्ति के लिये श्रम करना व्यर्थ क्यों नहीं ?

"मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं, क्योंकि जब तक ३६००० (छत्तीस सहस्र) बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है, उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना, क्या छोटी बात है ? जब आज खाते पीते हो, कल (फिर) भूख लगने वाली है, पुनः इसका उपाय क्यों करते हो ? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिये क्यों न करना ? जैसे मरना अवश्य है, तो भी

जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौट कर जन्म में आना है, तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ६)

क्या मुक्ति में सब जीव समान होते हैं ?

"जैसा संसार में एक प्रधान (और) दूसरा अप्रधान होता है, वैसा मुक्ति में नहीं (होता), किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स०११)

क्या मुक्ति में जीव का लय होता है या विद्यमान रहता है ?

(१) "विद्यमान रहता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ६)

(२) "जो लोग जीव का लय मानते हैं, उनके मत में अनिर्मोक्ष प्रसङ्ग दोष आता है, तथा मोक्ष के साधन भी निष्फल हो जाते हैं, क्योंकि जैसे सृष्टि के पूर्व ब्रह्म मुक्त था, वही अविद्या भ्रम, अज्ञानोपाधि के साथ होने से बद्ध हो गया है। वैसे ही प्राप्त मोक्ष चेतन को फिर भी अविद्योपाधि का सङ्ग हो जायेगा। इससे मोक्ष की नित्यता नहीं रही, तथा जिस मोक्ष के लिये विवेकादि साधन किये जाते हैं, उस मोक्ष को प्राप्त होने वाले जीव का लय ही होना है, फिर सब साधन निष्फल हो जायेंगे, क्योंकि मुक्ति सुख का आनन्द भोगने वाले जीव का नाम निशान भी नहीं रहता।"

(वेदान्ति ध्वान्त निवारणम)

(३) "(मुक्ति में जीव) पृथक रहता है। क्योंकि जो मिल जाय, तो मुक्ति का सुख कौन भोगे और मुक्ति के जितने साधन हैं, वे सब निष्फल हो जायें, वह मुक्ति तो नहीं, किन्तु जीव का प्रलय जानना चाहिये।"

(स० प्र० स० ६)

मुक्ति में जीव कहाँ विद्यमान रहता है और कैसे विचरता है ?

"(उत्तर) ब्रह्म में" (विद्यमान रहता है)

"जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति, अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।"

(स० प्र० स० ६)

बिना स्थूल शरीर के मुक्त जीव सुख और आनन्द भोग कैसे करता है ?

(१) "उसके सत्यसङ्कल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिक सङ्ग नहीं रहता।......मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ

नहीं रहते, (किन्तु उसके) अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब (वह) सुनना चाहता है, तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है, तब त्वचा, देखने के सङ्कल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये घ्राण, सङ्कल्प विकल्प करने (के) समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित, और अहङ्कार के अर्थ अहङ्कार रूप अपनी स्व-शक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और सङ्कल्प मात्र शरीर होता है। जैसे शरीर के आधार रह कर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्व-कार्य्य करता है, वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।"

(स० प्र० स० ६)

(२) "(प्रश्न) जब मोक्ष में शरीर और इन्द्रियां नहीं रहतीं, तब वह जीवात्मा व्यवहार को कैसे जानता और देख सकता (है) ?

(उत्तर) वह जीव शुद्ध इन्द्रिय, और शुद्ध मन से इन आनन्द रूप कामों को देखता और भोगता भया, उसमें सदा रमण करता है, क्योंकि उसका मन और इन्द्रियां प्रकाश स्वरूप हो जाता हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मुक्ति विषय)

(३) "(वे मुक्त जीव) जो जो सङ्कल्प करते हैं, वह २ लोक और वह २ काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़ कर सङ्कल्प-मय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं, क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं, वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते। जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा है कि "हे परम पूजित धन-युक्त पुरुष ! यह स्थूल शरीर मरण-धर्मा है और जैसे सिंह के मुख में बकरी होवे, वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच है। सो शरीर इस मरण और शरीर-रहित जीवात्मा का निवास स्थान है, इसलिये यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है। क्योंकि शरीर-सहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती ही है और जो शरीर-रहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है, उसको सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता, किन्तु सदा आनन्द में रहता है।"

(स० प्र० स० ६)

(४) "जैसे सांसारिक सुख शरीरके आधार से भोगता है, वैसे परमेश्वर के आधार मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है। वह मुक्त जीव, अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता है। शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता हुआ सब लोक लोकान्तरों में, अर्थात् जितने यह लोक दीखते हैं और नहीं दीखते, उन सब में घूमता है। वह सब पदार्थों को जो कि उसके ज्ञान के आगे हैं, देखता है। जितना ज्ञान अधिक होता है, उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने

से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है।"

(स० प्र० स० ९)

मुक्ति में जीवात्मा की शक्ति कै प्रकार की और कितनी होती है ?

"मुख्य एक प्रकार की शक्ति (होती) है। परन्तु बल[१], पराक्रम[२], आकर्षण[३], प्रेरणा[४], गति[५], भीषण[६], विवेचन[७], क्रिया[८], उत्साह[९], स्मरण[१०], निश्चय[११], इच्छा[१२], प्रेम[१३], द्वेष[१४], संयोग[१५], विभाग[१६], संयोजक[१७], विभाजक[१८], श्रवण[१९], स्पर्शन[२०], दर्शन[२१], स्वादन[२२], और गन्ध ग्रहण[२३] तथा ज्ञान[२४], इन २४ (चौबीस) प्रकार के सामर्थ्य-युक्त जीव है। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है। जो मुक्ति में जीव का लय होता, तो मुक्ति का सुख कौन भोगता ?

(स० प्र० स० ९)

संन्यास धर्म

संन्यास संस्कार किसे कहते हैं ?

"संन्यास संस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरे।"

(संस्कार विधि, संन्यास संस्कार)

संन्यास कब ले सकते हैं ?

संन्यास तीन प्रकार का है—

(पहिला प्रकार) "क्रम संन्यास"

"ब्रह्मचर्य पूर्ण करके गृहस्थ, और गृहस्थ होके वनस्थ, वनस्थ होके संन्यासी होवे। यह "क्रम संन्यास" अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करता २ वृद्धावस्था में जो संन्यास लेना है, उसी को "क्रमसंन्यास" कहते हैं।"

(दूसरा प्रकार)

"यदहरेव विरजेत् यदहरेव प्रव्रजेद्वानाद्वा गृहाद्वा। यह ब्राह्मण ग्रंथों का वाक्य है। जिस दिन दृढ़ वैराग्य प्राप्त होवे, उसी दिन चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो, अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान न करके गृहाश्रम से ही सन्यासाश्रम ग्रहण करे, क्योंकि संन्यास में दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना भी मुख्य कारण है।"

(तीसरा प्रकार)

"ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्", यह भी ब्राह्मण ग्रंथका वचन है। यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य, सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान विज्ञान को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठ जावे, पक्षपात रहित होकर सब के उपकार करने की इच्छा होवे, और जिसको दृढ़ निश्चय हो जावे कि मैं मरण पर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूँगा, तो वह न गृहाश्रम करे (और) न वानप्रस्थ, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण कर ही के संन्यासाश्रम को ग्रहण कर लेवे।"

(संस्कार विधिः, संन्यास)

"जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो, उसी दिन घर वा बन से सन्यास ग्रहण कर लेवे। पहिले सन्यास का पक्ष क्रम कहा (है) और इस में विकल्प, अर्थात् वानप्रस्थ करे। गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ग्रहण करे और तृतीय पक्ष यही है कि जो पूर्ण विद्वान्, जितेन्द्रिय विषय भोग की कामना से रहित, परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो, वह ब्रह्मचर्याश्रम ही से सन्यास लेवे।"

(सत्यार्थप्रकाश, स० ५)

संन्यास धर्म के वाह्य चिह्न।

"यज्ञोपवीत शिखादि चिह्नों को छोड़.........ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकल कर संन्यासी हो जावे।"

"जब सन्यास ग्रहण की इच्छा हो, तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे, फिर संन्यास ग्रहण करे।"

नोट—वानप्रस्थी तो अपनी स्त्री को अपने साथ रख सकता है, परन्तु संन्यासी को किसी अवस्था में भी अपनी स्त्री को अपने साथ रखने की आज्ञा नहीं है।

(सम्पादक)

"केश, नख, डाढ़ी, मूँछ का छेदन करवावे, सुन्दर पात्र, दण्ड और कुसुम्भ आदि से रंगे हुये वस्त्रों का ग्रहण करके निश्चितात्मा सब भूतों को पीड़ा न देकर सर्वत्र विचरे।"

नोट—"यह अपने मन में निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न धारण, धर्म के कारण नहीं हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

तीन प्रकार के संन्यासियों में कौन सर्वोत्कृष्ट है?

"जो ब्रह्मचर्य से सन्यासी हो कर जगत् को सत्य शिक्षा करके, जितनी उन्नति

कर सकता है, उतनो गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

"जो ब्रह्मचर्य्य से (संन्यासी) होता है, वह पूर्ण वैराग्य-युक्त होने से (मोह में) कभी नहीं फंसता।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् विवाह क्यों न करे और संन्यास क्यों लेवे ?

"जिस पुरुष वा स्त्री का विद्या, धर्म वृद्धि, और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे·········(क्योंकि) जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यकता रोगी के लिये होती है, वैसी निरोगी के लिये नहीं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

"(हाँ) जो (ब्रह्मचर्य्य से संन्यास लेकर) निर्वाह न कर सके, और इन्द्रियों को न रोक सके, वह ब्रह्मचर्य्य से संन्यास न लेवे, परन्तु जो रोक सके, वह क्यों न लेवे ?

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

ब्रह्मचर्य से सीधा संन्यास लेने वाले का वीर्य्य कहां जाता है ?

"जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्य संरक्षण के गुण जाने हैं, वह विषयासक्त कभी नहीं होता, और उनका वीर्य्य विचाराग्नि का इन्धनवत है, अर्थात उसी में व्यय होजाता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

क्या सभी मनुष्यों को संन्यास लेना ज़रूरी है ?

"सब मनुष्य संन्यास ग्रहण कर ही नहीं सकते, क्योंकि सबकी विषयासक्ति कभी नहीं छूट सकेगी।"

"जो अनधिकारी सन्यास ग्रहण करेगा, तो आप डूबेगा और औरों को भी डुबावेगा।"

"इसलिये संन्यासी का होना अधिकारियों का उचित है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

भला संन्यासाश्रम की ज़रूरत ही क्या है ?

"जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है, क्योंकि:—

(१) इसके बिना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता।

(२) दूसरे आश्रमों को विद्या ग्रहण, गृह कृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है।

(३) पक्षपात छोड़कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत का उपकार करता है, वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता, क्योंकि संन्यासी को सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है, उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता।"

(४) "सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें, परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है, उतनी गृहस्थों को नहीं (होती)।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

जब ब्राह्मण सत्योपदेश करते हैं तो फिर संन्यासी से क्या प्रयोजन ?

"हाँ जो ब्राह्मण हैं, उनका यही काम है कि पुरुष, पुरुषों को और स्त्री, स्त्रियों को सत्योपदेश और पढ़ाया करें। (परन्तु) जितना भ्रमण का अवकाश संन्यासी को मिलता है, उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकों को कभी नहीं मिल सकता।

जब ब्राह्मण वेद विरुद्ध आचरण करें, तब उनका नियन्ता (भी) संन्यासी (ही) होता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

क्या केवल ब्राह्मण ही को संन्यास का अधिकार है ?

"ब्राह्मण ही को अधिकार है, क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान, धार्मिक, परोपकार-प्रिय मनुष्य है उसका ब्राह्मण नाम है। बिना पूर्ण विद्या के धर्म, परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं होसकता, इसलिये लोकश्रुति है कि ब्राह्मण को संन्यास का अधिकार है, अन्य को नहीं।..................इससे यह सिद्ध हुआ कि संन्यास ग्रहण का अधिकार मुख्य करके ब्राह्मण का है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

संन्यासी का धर्म क्या है ?

(१) "पक्षपात-रहित, न्यायाचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन, परोपकार, सत्य भाषणादि लक्षण सब आश्रमियों का अर्थात् सब मनुष्यमात्र का एक ही है, परन्तु संन्यासी का विशेष धर्म यह है।"

(२) (संन्यासी) सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा, अधर्म व्यवहारों से छुड़ा, सब संशयों का छेदन कर, सत्य-धर्म युक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें।"

(३) "पक्षपात-रहित वेदमार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना, संन्यासियों का मुख्य काम है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

संन्यासी पितृ-ऋण से कैसे छूट सकता है ?

"जो संन्यासियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे, वे सब, जानो, संन्यासी के पुत्र तुल्य हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

संन्यासी कब पापी, पतित और भार-रूप होता है?

(१) "जब (संन्यासी) गृहस्थों से अन्न वस्त्रादि लेते हैं, और उनका प्रत्युपकार नहीं करते, तो क्या वे महापापी नहीं होंगे ?"

(२) "जो इस संन्यास के मुख्य धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते, वे पतित और नरक गामी हैं।":

(३) "जैसे आँख से देखना (और) कान से सुनना न हो, तो आँख और कान का होना व्यर्थ है, वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्य शास्त्रों का विचार, (और) प्रचार नहीं करते, तो वे भी जगत् में व्यर्थ भार-रूप हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

(४) "ये संन्यासी लोग ऐसा समझते हैं कि हम को खण्डन मण्डन से क्या प्रयोजन ? हम तो महात्मा हैं, ऐसे लोग भी संसार में भार-रूप हैं।"

"यह लोग अपनी प्रतिष्ठा, खाने पीने के सामने, अन्य अधिक कुछ भी नहीं समझते और संसार की निन्दा से बहुत डरते हैं.................जब तृष्णा ही नहीं छूटी, पुनः संन्यास क्योंकर हो सकता है ?.................जब अपने २ अधिकार कर्मों को नहीं करते, पुनः संन्यासादि नाम धराना व्यर्थ है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ११)

क्या सन्यासी तीन दिन से अधिक कहीं न रहे ?

(१) "इन दिनों संन्यासियों पर बड़े २ जुल्म हो रहे हैं, अर्थात् संन्यासियों को वन में रहना चाहिये, एक ही बस्ती में तीन दिन से अधिक न रहे, इत्यादि २

प्रतिबन्ध (यदि) माने जावें, तो, भाई ! बताओ कि वह फिर किस प्रकार और किसे उपदेश करे ? क्या वह एक गाँव से दूसरे गांव को दौड़ता फिरे ?"

(उपदेश मन्त्र, पूना का व्याख्यान ४, धर्माधर्म विषय)

(२) "यह बात थोड़े से अंश में तो अच्छी है कि एकत्र वास करने से जगत् का उपकार अधिक नहीं हो सकता, और स्थानान्तर का भी अभिमान होता है, राग-द्वेष भी अधिक होता है, परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहने से होता हो, तो रहे, जैसे जनक राजा के यहां चार २ महीने तक पञ्चशिखादि और अन्य संन्यासी कितने ही वर्षों तक निवास करते थे।"

(सत्यार्थप्रकाश स० ५)

यदि सँन्यासी पुनः गृहस्थ हो जाय, तो ?

वल्लभ मत के व्यभिचारादि दोषों को दर्शाते हुए महर्षि लिखते हैं कि:—

"मैं कृष्ण, तू राधा, मेरा तेरा सङ्गम होवे" इत्यादि कुकर्म से वल्लभादि का मत पतित करने वाला जानना चाहिये, क्योंकि इनका पूर्व आचार्य लक्ष्मण भट्ट हुआ। उसने पहिले संन्यास ग्रहण करके पीछे गृहाश्रम धारण किया। इसलिये लक्ष्मण भट्ट ही पहिले कुत्ते के तुल्य वान्ताशी, अर्थात् उगले हुए को खाने वाला हुआ। पहिले गृहाश्रम को छोड़ के संन्यास किया, पीछे उसी वान्त के तुल्य त्यागे हुए गृहाश्रम का ग्रहण और संन्यास का त्याग किया।"

(वेद विरुद्ध मत खण्डन)

क्या सँन्यासियों का भी दाह कर्म सँस्कार होना चाहिये ?

संस्कार विधि, संन्यास-संस्कार प्रकरण में मनुस्मृति, अध्याय छः, श्लोक ६, "अनग्नि रनिकेतः स्याद्" की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं:—

"इसी पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते। यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया। यह आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों का छोड़ना है, स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है।"

(संस्कार विधि: संन्यास प्रकरण)

अन्त्येष्टि कर्म।

शरीर का अन्त।

"भस्मान्त ॅं शरीरम्"

"इस शरीर का संस्कार (भस्मान्तम्). अर्थात भस्म करने पर्यन्त है। शरीर का आरम्भ ऋतु दान और अन्त में श्मशान, अर्थात मृतक कर्म है।"

(संस्कार विधि, अन्त्येष्टि कर्म)

क्या सपिण्डी कर्म, गया श्राद्ध आदि क्रिया अकर्तव्य है ?

(गरुड़ पुराण आदि में दशगात्र, सपिण्डी कर्म, मासिक, वार्षिक गया श्राद्ध आदि क्रिया) अवश्य मिथ्या है, क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है, इसलिये अकर्तव्य है। मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का (मृतक जीव के साथ रहता है)। वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है।"

(संस्कार विधि)

क्या मुर्दे को नहलाना चाहिये ?

"जब कोई मर जावे, तब यदि पुरुष हो, तो पुरुष और (यदि) स्त्री हो, तो स्त्रियां उसको स्नान करावें, चन्दनादि सुगन्धलेप और नवीन वस्त्र धारण करावें।"

(संस्कारविधि)

मुर्दा जलाने की वेदी कितनी बड़ी हो ?

"उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे, उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लम्बा उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो, अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ, अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे।"

(संस्कार विधि)

चिता किस प्रकार चिनी जाय ?

"वेदी में थोड़ा २ जल छिटकावें। यदि गोमय उपस्थित हो, तो लेपन भी कर दे। उसमें नीचे से आधी वेदी तक लकड़ियां चिने, जैसे कि भित्ति में ईंट चिनी जाती है, अर्थात बराबर जमा कर लकड़ियां धरे। लकड़ियों के बीच में थोड़ा थोडा कपूर थोड़ी २ दूर पर रक्खे। उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे, अर्थात चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे, और पश्चात् चारों ओर, और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने, वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने………। मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊँचा रहे।………

पश्चात् घृत का दीपक कर के कपूर में लगा कर, शिर से आरम्भ कर, पाद पर्यन्त मध्य मध्य में अग्नि प्रवेश करावे।"

(संस्कार विधि)

दाह कर्म के पश्चात् फिर क्या कर्तव्य होता है ?

"जब शरीर भस्म हो जावे, पुनः सब जने वस्त्र प्रक्षालन स्नान करके जिसके घर में मृत्यु हुआ है, उसके घर का मार्जन, लेपन, प्रक्षालनादि से शुद्धि करके······ (होम कर) कि जिससे मृतक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु प्रवेश करे और सबका चित्त प्रसन्न रहे। यदि उस दिन रात्रि हो जाय, तब थोड़ी सी आहुति देकर, दूसरे दिन प्रातःकाल उस प्रकार स्वस्ति वाचन और शान्ति प्रकरण के मन्त्रों से आहुति देवे। तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो, तब मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर, चिता से अस्थि उठा के उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक् रख देवे। बस इसके आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्तव्य नहीं है, क्योंकि पूर्व (भस्मान्त शरीरम्) यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थि संचयन से पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्तव्य नहीं है।"

(संस्कार वि० अन्त्येष्टि)

क्या मनुष्य के जीते जी वा मरे पीछे कुछ दान भी करना चाहिये ?

"हाँ, यदि वह सम्पन्न हो, तो अपने जीते जी वा मरे पीछे उनके सम्बन्धी वेद-विद्या, वेदोक्त धर्म का प्रचार, अनाथ पालन, वेदोक्त धर्मोपदेशक प्रवृत्ति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें, बहुत अच्छी बात है।"

नोट—मरे पीछे दान कराने का प्रयोजन सर्व-हितकारी संस्थाओं की सहायता और शुभ कार्य्यों के लिये दान करने की प्रेरणा करना है। महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश स० ११ "श्राद्ध-विषय" में स्पष्ट लिखा है कि मरे हुए जीव के लिये दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण, गोदानादि "उन मरे हुए जीवों को तो नहीं पहुंचता।"

मुर्दा जलाना चाहिये या गाड़ना ?

मुर्दा गाड़ने के पक्ष में जो २ युक्तियाँ आम तौर पर दी जाती हैं, वे हम ऋषि के अपने शब्दों में प्रश्नोत्तर के रूप में देते हैं ताकि पाठकों को गाड़ने और जलाने, इन दोनों के हानि लाभ भली प्रकार विदित हो जायें।

जिससे प्रीति हो, उसे कैसे जलायें ?

(प्रश्न) "देखो! जिससे प्रीति हो, उसको जलाना अच्छी बात नहीं है और गाड़ना (तो ऐसा है) जैसा कि उसको सुला देना है, इसलिये गाड़ना अच्छा है।"

(उत्तर) "जो मृतक से प्रीति करते हो, तो अपने घर में क्यों नहीं रखते ? और गाड़ते भी क्यों हो ? जिस जीवात्मा से प्रीति थी, वह (तो) निकल गया, अब दुर्गन्ध-मय मट्टी से क्या प्रीति ? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो ? क्योंकि (यदि) किसी से कोई कहे, कि (हम) तुझको भूमि में गाड़ देवें, तो वह (यह) सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता उसके मुख, आँख, और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, (और) छाती पर पत्थर रखना कौनसी प्रीति का काम है ? और सन्दूक में डालके गाड़न से बहुत दुर्गन्ध हो कर पृथ्वी से निकल, वायु को बिगाड़ कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है ।"

(स० प्र० स० १३)

गाड़ने के दोष

(प्रश्न) गाड़ना बुरा क्यों है ?

(उत्तर) "एक मुर्दे के लिये कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये । इसी हिसाब से सौ हजार वा लाख, अथवा क्रोड़ों मनुष्यों के लिये कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है, न वह खेत, न बागीचा, और न बसने के काम की रहती है, इस लिये सब से बुरा गाड़ना है ।"

जलाना; गाड़ना; जलप्रवाह आदि में कौन अच्छा ?

(प्रश्न) जलाना, गाड़ना, जलप्रवाह करना और जंगल में फैंक देना, इन चारों में से कौनसी बात अच्छी है ?

(उत्तर) "सब से बुरा गाड़ना है, उस से कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना (है), क्योंकि उस को जल जन्तु उसी समय चीर फाड़ के खा लेते हैं, परन्तु जो कुछ हाड वा मल जल में रहेगा, वह सड़ कर जगत् को दुख दायक होगा । उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जङ्गल में छोड़ना है, क्योंकि उसको माँस-हारी पशु पक्षी लूँच खायेंगे, तथापि जो उस के हाड़ की मज्जा और मल सड़ कर जितना दुर्गन्ध करेगा, उतना जगत् का अनुपकार होगा और जो जलाना है, वह सर्वोत्तम है । क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे ।"

(स० प्र० स० १३)

(ऊपर यह भी कह आये हैं कि "गाड़ने से बहुत दुर्गंध होकर पृथ्वी से निकल, वायु को बिगाड़ कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है),"

—सम्पादक

क्या मुर्दा जलाने में दुर्गन्ध नहीं होती ?

(प्रश्न) "मुर्दा जलाने से भी तो दुर्गन्ध होता है"

(उत्तर) "जो अविधि से जलावें, तो थोड़ा सा (दुर्गन्ध ज़रूर) होता है, परन्तु गाड़ने आदि से बहुत कम (दुर्गन्ध) होता है।"

(सत्यार्थप्रकाश स० १३)

मुर्दा जलाने की विधि

(प्रश्न) किस विधि से मुर्दा को जलाया जाये, जिसमे दुर्गन्ध बिल्कुल न हो ?

(१) (उत्तर) "मुर्दे के तीन हाथ गहरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पाँच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ बीता, अर्थात चढ़ाव व उतार वेदी खोद कर शरीर के बराबर घी, उसमें एक सेर में रत्ती भर कस्तूरी, माशा भर केशर डाल, न्यून से न्यून आध मन चन्दन, अधिक चाहें जितना लें, अगर, तगर, कपूर आदि, और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा (कर) उस पर मुर्दा रख के पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक २ बीता तक भर के, घी की आहुति देकर जलाना चाहिये। (यदि) इस प्रकार से दाह करें, तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो, किन्तु इसी का नाम "अन्त्येष्टि", "नरमेध" (और) "पुरुषमेध" यज्ञ है।"

(स० प्र० स० १३)

(२) "जितना उसके (अर्थात् मृतक के) शरीर का भार हो, उतना घृत, यदि अधिक सामर्थ्य हो, तो अधिक लेवे।"

(संस्कार विधि अन्त्येष्टि)

मुर्दा जलाने के लिये इतना घी दरिद्र कहां से लायें ?

(१) (प्रश्न) मुर्दा को जलाने के लिये कम से कम २० सेर घी एक ग़रीब आदमी कहाँ से लाये ?

(उत्तर) जो दरिद्र हो, तो बीस सेर से कम घी चिता में न डाले, चाहें वह भीख माँगने, वा जाति वाले के देने, अथवा राज से मिलने से प्राप्त हो, परन्तु उसी प्रकार दाह करे, और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके, तथापि गाड़ने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है, क्योंकि एक विश्वाभर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाड़ने के समान अधिक नहीं बिगड़ती।

(स० प्र० स० ११)

(२) "और जो महा दरिद्र भिक्षुक हो, कि जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसको कोई श्रीमान् वा पंच बन के आध मन से कम घी न देवें, और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तौल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक माशा केसर, एक २ मन घी के साथ सेर सेर भर अगर, तगर, और घृत में चन्दन का चूरा भी यथा-शक्ति डाल, कपूर, पलाश, आदि के पूर्ण काष्ठ, शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुँचावें।"

(संस्कारविधि, अन्त्येष्टि)

॥ समाप्त ॥